शुभ कामनायें


सत्यमेव जयते

राष्ट्रपति सचिवालय,
राष्ट्रपति भवन,
नई दिल्ली-४

पत्रावली सं० ८-एम/७३

मार्च २६, १६७३

प्रिय महोदय,

राष्ट्रपति जी के नाम भेजे २२ मार्च, १६७३ के आपके पत्र से यह जानकर प्रसन्नता हुई कि भगवान महावीर जयन्ती समारोह समिति, कलकत्ता द्वारा महावीर जयन्ती १५ अप्रेल, १६७३ को मनायी जा रही है। जयन्ती समारोह की सफलता हेतु राष्ट्रपति जी अपनी शुभकामनायें भेजते हैं।

भवदीय,
रे० वे० राघवराव
राष्ट्रपति का अपर निजी सचिव

GOVERNOR OF MYSORE



राज भवन
बेंगलोर
२२ मार्च १९७३

प्रिय श्री कमल कुमारजी,

आपका ता० १७ मार्च का पत्र मुझे प्राप्त हुआ। ता० १५ अप्रेल को मैसूर राज्य के दो स्थानों पर इस अवसर पर सम्मिलित होने को मै बहुत पहले स्वीकृति दे चुका हूँ, अतः इस अवसर पर मेरा वहाँ आ सकना सम्भव नही होगा, इसके लिये क्षमा चाहता हूँ। आप लोगो ने इस योग्य समझा उसके लिये मै आपका बहुत आभारी हूँ।

शेष कुशल।

आपका
मोहनलाल सुखाडिया

ASSISTANT SECRETARY TO THE GOVERNOR
WEST BENGAL
Raj Bhavan,
Calcutta,



The 23rd March, 1973

D.O. No. 1571-G

Dear Sir,

Please refer to your letter dated the 22nd March, 1973, inviting the Governor to attend, as Guest-in-chief, the Bhagwan Mahavira Jayanti Celebrations to be held on the 15th April, 1973 at 7 p m under the auspices of the Bhagwan Mahavira Jayanti Samaroha Samiti, Calcutta

I am desired to thank you for the kind invitation and to say that the Governor regrets very much his inability to accept the invitation to attend the function on that day due to other engagements.

The Governor, however, sends his good wishes for the success of the Mahavira Jayanti Celebrations to be held by your Samiti.

Yours faithfully
A K. Banerjee
Asstt. Secretary to the Governor,
West Bengal

CHIEF MINISTER



Bhopal
No. 1831 C..M S.
Dated 3rd April 1973

Dear Shri Jain,

I have received your letter dated the 7th March, 1973 inviting me to be the Chief Guest of Bhagwan Mahavira Jayanti Celebrations, for which I thank you. I regret, it will not be possible for me to come to Calcutta due to prior engagements.

With good wishes,

Your sincerely,
P. C. Sethi

जीवन कुटीर
वर्धा
(महाराष्ट्र)
२६ मार्च, १९७३

प्रिय श्री कमलकुमार जैन,

आपका ता० १७ मार्च का पत्र मिला। धन्यवाद। आपने जैन कान्फ्रेन्स के उद्घाटन के लिए मुझे आमन्त्रित किया इसके लिए बहुत आभारी हूँ। किन्तु मुझे दुःख है कि मैं अप्रैल में कलकत्ता न आ सकूँगा। क्षमा करें।

विनम्र
श्रीमन्नारायण

प्रतिवेदन

भगवान् महावीर की २५७१ की जयन्ती के अवसर पर स्मारिका प्रकाशित करते हुये परम प्रसन्नता हो रही है। स्मारिका के लिये आये, प्रायः सभी लेख व कविताएँ प्रकाशित की गई है पर कुछ लेखों को स्थान की कमी तथा विलम्ब से आने के कारण प्रकाशित नही किया जा सका, जिसके लिये उन लेखक बन्धुओं से क्षमा चाहते हैं। लेख प्रायः यथावत् प्रकाशित किये गये हैं। कई लेखों को स्थानीय अंग्रेजी, हिन्दी, बंगला व उर्दू पत्रो में छापने के लिये भी भेजा गया है और आशा है, कई पत्रों में लेख प्रकाशित होंगे।

प्रत्येक वर्ष की तरह गत् वर्ष भी भगवान् महावीर की २५७० की जयन्ती बडी धूम-धाम से मनाई गई। सप्ताह व्यापी कार्यक्रम का आयोजन किया गया था। चैत्र शुक्ला त्रयोदशी वी सं० २४६७ तदनुसार ता० २७-३-७२ को जो श्री जैन विद्यालय में श्री विजयसिंह नाहर (भूतपूर्व पश्चिम बंगाल राज्य उप मुख्यमन्त्री) की अध्यक्षता में एक आम सभा की गई। प्रधान अतिथि श्री रामकृष्णजी सरावगी, राज्य मन्त्री पश्चिम बंगाल ने कहा था कि भगवान् महावीर के सिद्धान्त आज भी उतने ही महत्वपूर्ण है जितने कि २५०० साल पहले थे और अगर उनके उपदेशों व सिद्धान्तों को अपना लिया जाय तो सारे समाज, राष्ट्र व विश्व का भला हो जाय।

प्रधान वक्ता श्री सुमेरूचन्द दिवाकर "न्यायतीर्थ" ने कहा कि भगवान महावीर के अपरिग्रह व स्यादवाद के सिद्धान्त को अपनाया जावे तो विश्व में शान्ति शीघ्र सम्भव है। डा० रामचन्द्र् अधिकारी ने बताया कि भगवान् महावीर एक वैज्ञानिक थे।

अध्यक्ष श्री बिजयसिंह नाहर ने भगवान् महावीर को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुये कहा कि भगवान् महावीर की २५०० वी निर्वाण शताब्दी के उपलक्ष में जहाँ-जहाँ भगवान् का पदार्पण हुआ वहाँ रचनात्मक कार्य कर जनता को भगवान् के उपदेशो का स्मरण करवाना चाहिये।

भगवान महावीर का २५०० वाँ निर्वाणोत्सव

भगवान् महावीर के २५०० वाँ निर्वाण महोत्सव के सम्बन्ध में विचार-विमर्श हेतु श्री जैन सभा के तत्वावधान में कई बार सभा का आयोजन किया गया पर अभीतक कोई सक्रिय कार्यक्रम नही हुआ है। प्रयास जारी है और शीघ्र ही प्रान्तीय स्तर पर एक कान्फ्रेंस बुलाने का प्रोग्राम है।

राष्ट्रीय समिति के गठन को प्रायः एक वर्ष हो चुका है पर उसके द्वारा अभी तक कोई रचनात्मक कार्य नही हुआ है। इस सन्दर्भ में पश्चिम बंगाल में राज्य स्तर पर समिति का गठन भी अभीतक नही हुआ है।

भगवान् महावीर निर्वाणोत्सव के लिये कई सुझाव हैं जैसे यहाँ पर जैन कालेज, छात्रावास व अस्पताल बनाये जाँय। कलकत्ता व वर्दवान विश्वविद्यालय के जैन दर्शन की चेयर की स्थापना हो। मैदान में महावीर का एक स्मारक चिह्न हो। जैन कला मूर्तियो का चित्र, प्राचीन जैन चित्र, शिल्प, हस्तलिखित जैन ग्रन्थो की प्रदर्शनी

की जाय। जैनेतर लोगो के लिये छोटी-छोटी पुस्तकें सुलभ भाषा में छपवाकर वितरित की जाय। भगवान् महावीर के जीवन पर चित्रों व लेखो का संकलन कर उसे प्रकाशित किया जाय। अगले वर्ष भगवान् महावीर का २५०० वॉ निर्वाणोत्सव मनाना है, समय कम है। अतः समस्त जैन समाज को संगठित होकर इस कार्य को शीघ्र आरम्भ कर देना चाहिये।

सामूहिक क्षमपना सम्मेलन

रविवार ता० २४ दिसम्बर १९७२ को प्रातः कलकत्ते के मैदान (शहीद मिनार) में श्री जैन सभा के तत्वावधान में—श्री विजयसिंह नाहर की अध्यक्षता में सामूहिक क्षमापना सम्मेलन का विराट आयोजन किया गया। इसमें दस हजार से अधिक व्यक्ति उपस्थित थे। विभिन्न जैन सम्प्रदाय के कई साधु-साध्वी भी इस सम्मेलन में उपस्थित थे। सम्मेलन के एक दृश्य का चित्र इस स्मारिका में प्रकाशित किया जा रहा है।

विविध

स्मारिका के लिये भेजने वाले लेखको व विज्ञापन दाताओं के हम आभारी है। श्री जैन भवन के सहयोग से स्मारिकामें पश्चिम बगाल, उडीसा व तामिलनाडु के प्राचीन चित्र प्रकाशित किये गये हैं। स्मारिका भगवान् महावीर के सिद्धान्तो के प्रचार हेतु प्रकाशित की जा रही है और आशा है हमारा यह प्रयास सफल होगा। स्थानीय पत्रों के भी हम आभारी है जिसमें लेख छप रहे हैं तथा जो समय-समय पर इस सम्बन्ध में सूचना प्रसारित करते रहते हैं।

अन्त में समिति के पदाधिकारियो व सदस्यो का भी मैं आभारी हूँ जिनके सहयोग से महावीर जयन्ती समारोह सम्बन्धित कार्य व स्मारिका का प्रकाशन, सम्भव हो सके हैं।

कमलकुमार जैन
संयोजक



भगवान महावीर जयन्ती समारोह की आम सभा मंच पर बांये से दायें सर्वश्री रामकृष्ण सरावगी (उपमन्त्री पश्चिम बंगाल) डा० रामचन्द्र अधिकारी, श्रीविजय सिंह नाहर (भूतपूर्व उपमुख्य मन्त्री प० बंगाल) प्रो० श्री कल्याणमल लोढ़ा, श्री सुमेरूचन्द दिवाकर एवम् श्री रामचन्द्र सिंघी



शहीद मिनार के मैदान में आयोजित सामूहिक क्षमापना सम्मेलन (२४, सितम्बर १९७२) का एक दृश्य

भगवान् महावीर, विश्व-चिन्तन और वैज्ञानिक सन्दर्भ

—डा० गोकुलचन्द्र जैन

भगवान् महावीर और उनके चिन्तन का अध्ययन अब तक धार्मिक परिवेश में हुआ है। मेरी समझ से अध्ययन का यह एक पक्ष है। भगवान् महावीर और उनके चिन्तन को पूरी तरह समझने के लिए उनका अध्ययन विश्व चिन्तन तथा वैज्ञानिक सन्दर्भों में किया जाना आवश्यक है।

महावीर का जन्म ईसा पूर्व छठी शताब्दी मे हुआ था। यह युग सम्पूर्ण विश्व के लिए विचार-क्रान्ति का युग था। भारत में भगवान् महावीर, महात्मा बुद्ध तथा कुछ अन्य महापुरुषो ने ईश्वरवाद की अबूझ पहेली तथा धर्म में केन्द्रित सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक जीवन के विरुद्ध आवाज उठायी थी। चीन में लाओत्से और कन्फ्यूशियस ने विचार क्षेत्र में क्रान्ति पैदा कर दी थी। ग्रीस में सुकरात, पाइथागोरस और प्लेटो ने क्रान्ति की आवाज बुलन्द कर रखी थी। ईरान या परसिया में जरथुस्त्र चिन्तन को नयी दिशा दे रहे थे। अन्य देशो में भी चिन्तन की धारा प्रकृति के अध्ययन से हटकर व्यक्ति और सामाजिक जीवन की समस्याओ को अध्ययन की ओर मुड गयी थी।

इन महापुरुषों के चिन्तन का अध्ययन विश्व-दर्शन की आधार-भूमि के रूप में किया जाता है। वे विश्व के महान् दार्शनिक माने जाते हैं। महावीर का अध्ययन अभी तक इस प्रकार के व्यापक सन्दर्भ में नही हुआ। मेरी स्पष्ट मान्यता है कि महावीर ने जो चिन्तन दिया उसका सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक जीवन से गहरा सम्बन्ध है। यदि महावीर ने मात्र धर्म को ही नया रूप दिया होता, तो महावीर को जितनी बडी सफलता अपने जीवन में अपने मिशन या तीर्थ को व्यापक रूप देने में मिली, वह कदापि सम्भव नही थी।

इससे भी महत्त्वपूर्ण है महावीर के बाद पच्चीस सौ वर्षों से चली आ रही उनकी जीवन्त परम्परा। यदि सामाजिक जीवन को महावीर का चिन्तन समग्र रूप से व्याप्त न करता, तो इतनी लम्बी अवधि तक उनकी परम्परा का चलना सम्भव नही था। महावीर के समय में बुद्ध के अतिरिक्त और भी पाँच महापुरुष भारत में क्रान्ति का बीडा उठाये हुए थे। उनको भी गणनायक, संघनायक, तीर्थङ्कर, बहुजनसेवी, यशस्वी आदि कहा गया है। किन्तु इनमें से किसी के भी चिन्तन की जीवन्त परम्परा आज मौजूद नही है। अधिकाश तो अपने शास्ता के जीवनकाल में ही मृतप्राय हो गये थे। जो आगे चले, वे भी थोडे समय बाद समाप्त हो गये।

महात्मा बुद्ध को अपने काल में जितनी सफलता मिली उससे भी अधिक व्यापक प्रसार बाद के युगों मे मिला। सम्राट अशोक ने बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए संसार व्यापी प्रयत्न किये। इस सबके बावजूद जिस देश में बुद्ध जन्मे और जहाँ पर उन्होने अपने मिशन की स्थापना की, वही पर वह नाम शेष हो गया। इसका बडा कारण मुझे यही प्रतीत होता है कि बुद्ध के चिन्तन ने सामाजिक जीवन को समग्र रूप से व्याप्त नही किया था।

इन बातो को ध्यान में रखकर महावीर के चिन्तन का अध्ययन करने के लिए कुछ आधार सूत्र इस प्रकार हो सकते हैं—

१—वर्गविहीन समाज रचना

महावीर के युग में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, इन चार वर्गों में समाज बँटा था। समाज रचना के ये आधार विन्दु थे। जन्म के आधार पर ऊँच-नीच का वर्ग-भेद तीव्र था। महावीर ने कहा—वह समाज कैसा, जिसमें आदमी आदमी के निकट न आ सके। वह समाज रचना कैसी, जिसमें जाति और कुल को ऊँच और नीच होने का आधार वनाया जाय? मानव मात्र की जाति एक है—मानव जाति, पशुओं की तरह उसमें गौ और अश्व का भेद नही किया जा सकता। कार्य के आधार पर समाज व्यवस्था होनी चाहिए। वर्ग-विहीन समाज रचना।

२—व्यक्ति की प्रतिष्ठा

व्यक्ति समाज की सवसे महत्त्वपूर्ण इकाई है। महावीर के युग में ईश्वरवादी चिन्तन के कारण व्यक्ति का अस्तित्व समाप्त होता जा रहा था। ईश्वर की कृपा या अकृपा पर उसका जीवन निर्भर हो गया था। महावीर ने कहा—इस प्रकार के किसी ईश्वर को मानने की आवश्यकता नही, जो विषमतापूर्ण विश्व को वनाये और सफाई के लिए कहे कि यह तो अपने-अपने कर्मों के आधार पर वनाया गया है।

महावीर ने कहा—आत्मा स्वयं परमात्मा है। वह अपना ईश्वर स्वयं है। अपने ईश्वरत्व को पहचानो और परमात्मस्वरूप को पाने का प्रयत्न करो। अपने किये का फल स्वयं भोगना होगा। इसलिए सत्कर्म करो।

महावीर के इस चिन्तन ने व्यक्ति को जो आत्मवोध कराया, वह सामाजिक जीवन का मूल आधार वना।

३—यज्ञों का विरोध

महावीर के युग में यज्ञ धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक जीवन के केन्द्र विन्दु थे। यज्ञ मूलक संस्कृति ने समाज के आर्थिक जीवन को पूर्ण रूप से अस्तव्यस्त कर दिया था। इसलिए महावीर ने कहा कि ऐसे यज्ञो से क्या लाभ जो समाज को उजाड़ें। जीवन के लिए उपयोगी सामग्री को अग्नि मे जलाने में धर्म नही हो सकता।

महावीर के इस यज्ञ विरोध से समाज के आर्थिक जीवन को वड़ा वल मिला।

४—विचार मूलक आचार

समाज व्यवस्था के लिए ही महावीर ने अनेकान्त का चिन्तन और अणुव्रत की आचार संहिता दी। उनका आचार-विचार मूलक था। वह सवके लिए समान था। उसमें वर्गभेद नही था।

५—राजनीतिक जीवन

महावीर ने कहा—जो अपना शासन नही कर सकता, वह दूसरों का प्रशासन क्या करेगा। युद्ध में हजारों योद्धाओं को जीतने की अपेक्षा अपने-आप को जीतना महत्त्वपूर्ण है। उन्होने कहा—जिस प्रकार फूलो को कष्ट पहुँचाये विना भौरा फूलो से रस ले लेता है, उसी प्रकार अपना भागदेय ग्रहण करना चाहिए।

महावीर स्वयं राजपुत्र थे। उस युग के प्रसिद्ध और प्रभावक राज्य परिवारों से उनका घनिष्ट सम्वन्ध था। महाराज चेटक तथा श्रेणिक विम्वसार उनके निकट सम्वन्धी थे। इस सवके कारण भी राजनीतिक जीवन पर महावीर के चिन्तन का विशेष प्रभाव पड़ा।

महावीर के चिन्तन का इन सन्दर्भों में अध्ययन करने पर महावीर एक वहुत वड़े समाजशास्त्री के रूप में

हमारे सामने आते हैं उनका चिन्तन एक ऐसा समाज शास्त्रीय दर्शन प्रस्तुत करता है, जो देश और काल की सीमाओं से परे हैं। मानव मात्र के लिए है। सारे विश्व के लिये है।

भगवान् महावीर के चिन्तन का अध्ययन अब इस दृष्टिकोण से किया जाना चाहिए। विश्व के दार्शनिकों के चिन्तन के साथ महावीर के चिन्तन का अध्ययन करके विश्व कल्याण के लिए महावीर के चिन्तन का अमृत प्रस्तुत करना चाहिए। दूसरी बात वैज्ञानिक सन्दर्भों की है। यह और अधिक महत्वपूर्ण है इस विषय में दो बातें ध्यान में रखनी होंगी। एक यह कि महावीर की पच्चीस सौ वर्षों में व्याप्त परम्परा के साहित्य मे जो वैज्ञानिक तथ्य उपलब्ध होते हैं, उनका अध्ययन किया जाये। दूसरे यह कि सैद्धान्तिक मान्यताओं का प्रायोगिक अध्ययन किया जाये। उदाहरण के लिए कुछ विषय ये हैं—

१ : लोक की रचना के विषय में वातवलय का सिद्धान्त बहुत महत्वपूर्ण है। तीन वातवलय इस विश्व के आधार बताये गये हैं। अन्तरिक्ष की खोज से वातवलयो की मान्यता थोडी-थोडी समझ में आ जाती है। इसका पूरा अध्ययन किया जाये तो आन्तरिक्ष यात्रा के नये आयाम खुल सकते हैं।

लोक के स्वरूप की जो मूलभूत मान्यता थी, संभवतया बाद के व्याख्या ग्रंथो में वह डूब गयी है। इस कारण हम उसके अध्ययन सूत्र नही पकड पा रहे हैं और हमें लगता है, जैसे ये मान्यताएं काल्पनिक रही हो। जब तक इनका सम्यक् परीक्षण न कर लिया, तब तक इनको झुठलाने की बात मेरी समझ में नही आती।

२ : जीव के विकाश की प्रक्रिया का प्रायोगिक अध्ययन ससार की अनेक गुत्थियो को सुलझा सकता है। डार्विन ने विकासवाद का सिद्धान्त प्रतिपादित किया था। हमारे यहॉ निगोद से लेकर मोक्ष तक की विकास प्रक्रिया का विधिवत् वर्णन किया है।

इसका अध्ययन डार्विन के सिद्धान्त तथा अन्य नवीन खोजों के साथ तुलनात्मक दृष्टि से अपेक्षित है।

३ : कर्मबन्ध की रासायनिक प्रक्रिया का अध्ययन एक महत्वपूर्ण विषय है। स्निग्ध और रूक्ष कर्म पुञ्ज पद्गलो का बन्ध किस प्रकार होता है? किन परमाणुओ का आस्रव होने के बाद भो बन्ध नही होता? बंधे हुए कर्म परमाणुओं की निर्जरा किस प्रकार होती है, इत्यादि का अनुसन्धान होने पर कई नये तथ्य उद्घाटित होंगे।

४ : कर्म सिद्धान्त में जो गणितीय सामग्री है, उसमें आधुनिक गणित सिद्धान्त की सबसे जटिल 'सेट्थ्योरी' के समाधान की सामग्री उपलब्ध है। इसका अध्ययन प्रायोगिक रूप में आवश्यक है।

इसी प्रकार के अन्य अनेक विषय हैं, जिनका अध्ययन प्रायोगिक स्तर पर होना चाहिए।

उपर्युक्त दोनो प्रकार से अर्थात् समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से तथा प्रायोगिक रूप में महावीर के चिन्तन का अध्ययन परम्परागत ढंग की पाठशालाओ, विद्यालयो या साहित्यिक अनुसन्धान के लिए स्थापित संस्थानो में संभव नही है। मानविकी तथा विज्ञान के निष्णात और निष्ठावान् अध्येता तथा सिद्धान्तों के सच्चे ज्ञाता जब सम्मिलित रूप से इस दिशा में प्रवृत होंगे तभी इस प्रकार के अध्ययन सम्भव हैं।

मै इस बात को वर्षों से कहता आ रहा हूँ। आचार्य तुलसी जी ने जब जैन विश्व भारती की स्थापना की बात प्रारम्भ की थी तब उनके समक्ष भी मैने यह बात रखी थी। बम्बई में महावीर निर्वाण शताब्दी के लिए कमेटी बनी तब उनको भी मैने यह लिखा था कि इस अवसर पर अन्तर्राष्ट्रीय स्तर का कोई संस्थान स्थापित हो सके, तो शताब्दी मनाना सही माने में सार्थक होगा।

राष्ट्रीय समिति ने सिद्धान्त रूप में काउन्सिल बनाने की बात स्वीकार की है। यदि यह काउन्सिल अन्य काउन्सिलो की तरह केन्द्रीय अनुसन्धान संस्थान की स्थापना करती है और उसमें उपर्युक्त प्रकार के अध्ययन अनुसन्धान की व्यवस्था होती है, तो एक बहुत बडे अभाव की पूर्ति हो जायेगी, किन्तु यदि यह काउन्सिल विश्वविद्यालयी में चेयर खुलवाने वाली अनुदान संस्था के रूप में ही काम करती है, तो इससे अधिक लाभ नही होगा।

जैन विद्याओं को एक व्यापक सन्दर्भ देने के लिए, इसे जैनिज्म की अपेक्षा जैनोलाजी शब्द बहुत सोच-विचार के बाद दिया गया है। इसमें मानविकी तथा विज्ञान (ह्यूमनिटीज़ एण्ड साइन्सेज) से सम्बन्धित सभी विषयो को अन्तर्भुक्त माना गया है। जैनोलाजिकल रिसर्च सोसाइटी उपर्युक्त प्रकार के अध्ययन-अनुसन्धान की भूमिका तैयार कर रही है। कुछ विषयो पर कार्य आरम्भ भी हुआ है, किन्तु जब तक ऐसे संस्थान की स्थापना नही हो जाती, जिसमें उपर्युक्त प्रकार के अध्ययन और अनुसन्धान कार्य सम्भव हो, तब तक कार्यों को आगे बढ़ाने में अनेक प्रकार की कठिनाइयाँ है। हम इस बात के लिए पूर्ण प्रयत्नशील हैं कि इस प्रकार के संस्थान की स्थापना शीघ्र हो। नयी और पुरानी पीढ़ी तथा भगवान महावीर की सभी परम्पराओ के श्रद्धेय साधुओ और श्रावकों को इस दिशा में आगे बढ़कर बीड़ा उठाना चाहिए।

—*::*—

महावीर का धर्म—विश्व शान्ति का साधक

(डा० ज्योति प्रसाद जैन, लखनऊ)

यह एक तथ्य है कि आज विश्व अशान्त है, प्रत्येक व्यक्ति अशान्त है। अनेक प्रबुद्ध विचारक एवं राजनीतिक शान्ति स्थापना के लिये सतत प्रयत्नशील है, किन्तु शान्ति की सम्भावना उत्तरोतः दूर होती प्रतीत होती है। स्वर्गीय राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी आधुनिक युगमें शान्तिके अग्रदूत थे। उनका समस्त जीवन शान्ति के लिये प्रयत्न करते ही बीता और उसीके लिये उनका बलिदान भी हुआ। उनके जीवन में दो-दो विश्वयुद्ध हुये। उक्त युद्धों में भी उनकी भूमिका एक शान्तिदूत की ही रही। कुछ विद्वानों का कहना है कि वह ईसाई धर्म से प्रभावित थे, कोई कहता है कि वह रूसी मनिषी टालस्टाय से अथवा अंग्रेज चिन्तक रस्किन के विचारो से प्रभावित थे। भगवद्‌गीता के भी वह परम भक्त थे। यों उनके प्रारम्भिक जीवन में जिस विचारधारा ने उन्हें अत्यधिक प्रभावित किया था वह जैन थी। जैन सन्त श्रीमद् राजचन्द्र भाई को गाँधीजी अपना गुरु मानते थे और उनके सम्पर्क से ही अध्यात्मिकता, अहिंसा एव सत्य में बापू की आस्था दृढ़ हुई थी। धर्म की दृष्टि से सम्प्रदाय विशेष का ही नाम लिया जाय तो गाँधीजी परम वैष्णव हिन्दू थे, किन्तु सभी धर्मों के प्रति उनका समभाव था। सभी धर्मों को आदर की दृष्टि से देखते थे और स्थायी शान्ति के लिये इस सर्वधर्मसमभाव को वह आवश्यक भी समझते थे।

इस प्रसङ्ग में यह कहना अत्युक्तिपूर्ण नही है कि जैनधर्म सर्वाधिक शान्तिपूर्ण धर्म परम्परा है। प्राचीन भारत में एक के बाद एक, चौबीस श्रमण तीर्थङ्कर हो गये हैं। इनमें एक दूसरे के मध्य पर्याप्त अन्तराल रहे हैं। आदिनाथ ऋषभदेव इस परम्परा के प्रथम तीर्थङ्कर थे और वर्तमान महावीर अन्तिम। इन्ही तीर्थङ्कर महावीर का निर्वाण ईसा के जन्म से ५२७ वर्ष पूर्व हुआ था। अगले वर्ष, देश-विदेश में उनका २५००वाँ निर्वाण महोत्सव मनाया जा रहा है। इन श्रमण तीर्थङ्करों द्वारा पुरस्कृत, प्रतिपादित, स्वयं आचरित तथा जन-जन में पदातिक विहार करके प्रचारित धर्म ही जैन धर्म के नाम से प्रसिद्ध है। महावीर आदि तीर्थङ्करो ने इस अहिंसा प्रधान निग्रन्थ धर्म का प्रचार—'सर्व सत्वानां हिताय, सर्व सत्वानां सुखाय' किया था। किसी एक जाति, वर्ण, वर्ग या समुदाय के लिये नही, वरन् मनुष्य मात्र के—प्राणीमात्र के हितसुख्य के लिये समभाव से किया था।

इस धर्म के मूलाधार तीन कहे जा सकते हैं—**आत्मोपम्य, अनेकान्त** और **अहिंसा**, और तीनों का ही लक्ष्य शान्ति प्रदान करना है, सर्वत्र शान्ति की स्थापना करना है—व्यक्ति को, परिवार को, समाज को, देश और राष्ट्र को, सम्पूर्ण विश्व को शान्ति प्राप्त हो, कही भी किसी प्रकार की अशान्ति न रहे।

आत्मोपम्य का सिद्धान्त बताता है कि संसार में जितने भी देहधारी प्राणी हैं, छोटे-से-छोटे जीव-जन्तु पशु-पक्षियो से लेकर मनुष्य पर्यन्त, सभी आत्म तत्व विशिष्ट हैं। आत्माओं की अपनी-अपनी स्वतन्त्र सत्ता है, और ये समस्त आत्मायें अपने स्वभाव, क्षमताओं गुण धर्मो से समान हैं। दुःख-सुख की जैसी अनुभूति हमें होती है वैसी ही अन्य सब प्राणियों को होती है। प्राणी-प्राणी में, व्यक्ति, व्यक्ति में कोई भेद नही है, और न ही होना चाहिये।

अतएव 'सवो सव्व भूस्सु' सबको अपने समान समझो, उनके साथ वैसा ही वर्ताव करो जैसा कि तुम चाहते हो वे तुम्हारे साथ करें। उन सबमें समान रूप से देवत्व या परमात्मत्व निहित है। धर्माचरण द्वारा अपना कल्याण करने का सबको समान अधिकार है। **आत्मोपम्य का यह सिद्धान्त विश्वमैत्री और विश्वबन्धुत्व का प्रतिपादक तथा सार्वभौमिक शान्ति का विधायक है।**

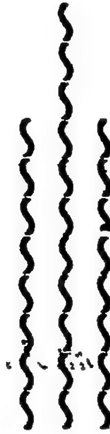
अनेकान्त का सिद्धान्त, जो वस्तु तत्व विषयक वैज्ञानिक अनुभव पर आधारित है, व्यक्ति को उदार एवं सम्यक दृष्टि प्रदान करता है। प्रत्येक वस्तु में अनेक गुण धर्म होते हैं, उसके अनेक पहलू होते हैं। भिन्न-भिन्न व्यक्ति भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणो से उसका वर्णन करते हैं। सत्य की व्यक्ति या धर्म की बपौती नही है। सब की बात सहिष्णुता पूर्वक सुनो और जिस दृष्टिकोण से वह कही गई है उसे समझने का प्रयत्न करो। हमारे बडे-से-बडे विरोधी की बात भी किसी न किसी एक दृष्टिकोण से सही हो सकती है। उदार समन्वय बुद्धि से उस बात को सुनने और उस पर विचार करने की आवश्यकता है। ऐसी दृष्टि प्राप्त होने पर कदाग्रह, हठधर्मी पक्षपात आदि के लिये गुन्जायश नही रहती। समस्त पारस्परिक विवाद एवं झगडे समाप्त करने का यह अमोघ उपाय है। अनेकान्त विचारधारा वाला व्यक्ति जो कथन करता है वह स्याद्वाद पद्धति से करता है—"ही" के स्थान में "भी" का प्रयोग करता है, अपनी बात ही सम्पूर्ण सत्य है और अन्य सब का मत सर्वथा असत्य है, ऐसा एकान्त दावा वह नही करता। इस प्रकार की सहिष्णुतापूर्ण उदार समन्वय बुद्धि पारस्परिक शान्ति की विधायक है। इसका प्रयोग दार्शनिक और धार्मिक क्षेत्र में ही नही, सामाजिक, राजनैतिक, आदि लौकिक जीवन के भी प्रत्येक क्षेत्र में सफलता पूर्वक किया जा सकता है और उसके द्वारा शान्ति का सम्पादन होगा ही।

अहिंसा को तो भ० महावीर आदि निर्ग्रन्थ तीर्थंकारो ने 'परमोधम्म'-परमधर्म कहा, उसे साक्षात् परमब्रह्म की पदवी प्रदान कर दी (अहिंसा भूतानां जगति विदितं ब्रह्मपरमम्) धर्म का लक्षण ही अहिंसा और जीव-रक्षा बताया। जैन तीर्थंकारो ने कहा कि धर्म जो स्वयं में सर्वोत्कृष्ट मंगल है वह अहिंसा रूप ही है। जहाँ हिंसा है वहाँ धर्म नही—धर्म हिंसा रहित ही हो सकता है। उनका कहना था कि संसार में जितने प्राणी है सभी को सुख साता प्रिय है, दुख को सभी अपने प्रतिकूल समझते हैं, वद्ध-बन्धनादि सभी को अप्रिय है, जीवन सभी को प्रिय है, सभी जीवित बने रहना चाहते हैं, अतएव किसी भी प्राणी की मन-वचन काय तथा कृत-कारित-अनुमोदन द्वारा किसी प्रकार भी हिंसा न करो, उसे मानसिक व शारीरिक कष्ट और पीडा न पहुँचाओ। इस प्रकार हिंसा न करना ही अहिंसा है। जीवरक्षा, दया, करुणा, लोक सेवा, विश्वमैत्री आदि के रूपों में अहिंसक प्रवृत्ति चरितार्थ होती है, और परिणाम उसका शान्ति है। युद्धों से युद्धों का अन्त नही होता। हिंसा के द्वारा हिंसा समाप्त नही हो सकती। हिंसा और युद्धो की समाप्ति अहिंसा द्वारा ही सम्भव है। अहिंसा की ही पर्याय सत्य, अस्तेय, शील एवं अपरिग्रह है। स्थूलरूप में भी इन व्रतों का पालन करने वाले, उन्हें अपने जीवन में उतारने वाला व्यक्ति अपनी और दूसरों की सुख शान्ति का विधायक होता है। संसार में जितने झगडे टंटे, कलह विवाद युद्धादि अशान्ति के कारण है उन सबकी जड ईर्ष्या द्वेष, मद-मत्सर्य, वैर-विरोध, धन सम्पत्ति की लोलुपता, पर प्रभुता या सत्ता की लोलुपता अथवा विषय लोलुपता आदि ही होते हैं। किन्तु अहिंसा-सत्य-अचौर्य-ब्रह्मचर्य-अपरिग्रह की जितने अंशों में भी व्यक्ति के, अतः समुदाय या समाज के, जीवन में प्रतिष्ठा होती है, अशान्ति के उपरोक्त कारणों का निरा-करण भी स्वतः होता जाता है।

नित्य प्रति त्रैकालिक सामायिक के समय एक जैन यह भावना करता है कि—'प्राणी मात्र से मेरी मैत्री है, सम्पूर्ण लोक मेरा मित्र है, मेरा किसी से वैर नही है, सब प्राणियों में परस्पर अवैर हो, वैर कही नही। मै किसी के दुःख की चाह न करूँ, कोई भी किसी का दुख न चाहे, सभी प्राणी सुखी रहे।



 श्रमण भगवान महावीर जयन्ती के शुभ अवसर पर
हमारी हार्दिक शुभ कामनाएँ :—



जुगराज तेजराज

२, पोर्चूगीज चर्च स्ट्रीट,
कलकत्ता-१



भगवान महावीर—उनका जीवन और सन्देश

लेखक—कैलाश जिन्दल, एम. ए एल. एल. बी. आई. आर. एस. ऐडवोकेट

भगवान महावीर का जन्म ईसा से ५०६ वर्ष पूर्व हुआ था। उसके पिता वैशाली गणतन्त्र राज्य की क्षत्रीय जाति के नाम बंश के प्रमुख थे। पटना से २७ मील उत्तर आज कल बेसढ़ गाँव है। वही पहले वैशाली गणराज्य था। वर्धमान स्वामी-जिन्हे सन्मति, वीर, और महावीर भी कहते हैं—३० वर्ष की अवस्था में अपने कुटुम्त्री जन से विदा लेकर, जंगल में एकान्त-वास के लिये चले गये। बारह वर्ष ध्यान लगाने के उपरान्त उन्हें ससार के दुःखो का कारण पता लगा और उनसे मुक्ति पाने का द्वारा भी। बारह वर्ष की तपस्या और ध्यान से जो ज्ञान प्राप्त हुआ, उसका महावीर स्वामी ने तीस वर्ष तक प्रचार किया। और फिर बिहार में पावापुरी स्थान से निर्वाण-गति को प्राप्त हुये।

केवली वर्द्धमान के मुख से जो वाणी मुखरित होती थी-उसका मुर्ख और पण्डित, पशु और पक्षी सभी अपनी अपनी भाषा में समझ लेते थे। वाणी का सन्देश था कि आत्मा-अहम्-अनादि और अनन्त है। ज्ञान आत्मा का स्वरूप है। आत्मा के विना ज्ञान नही, और ज्ञान के विना आत्मा नही। संसारी जीव केवल आत्मा नही है। संसार में दो ही वस्तु है-जीव और अजीव। जीव का अजीव के विना अस्तित्व ही नहीं, किन्तु अजीव का जीव के विना अस्तित्व है। जड और चेतन के सम्मिश्रण को ही "जीवात्मा" कहते हैं। आत्मा स्थूल या सूक्ष्म पदार्थ से थोडे समय के लिये या अधिक समय के लिये, भारी तौर पर या हल्की तौर पर, निरन्तर बँधी रहती है, घिरी रहती है, ये ही बन्धन समस्त सृष्टि की अभिव्यक्ति है—मानवी और अमानवी।

"कर्म शब्द से सभी परिचित हैं। भगवत् गीता में इसका विवरण है।" जैसा बोवोगे, वैसा काटोगे प्रचलित जनश्रुति है। परन्तु जैन दर्शन में "कर्म" शब्द का दूसरा ही विशेष अर्थ है। "कर्म" जैन धर्म के अनुसार सूक्ष्म परमाणु को कहते हैं, जो इन्द्रियो के परे है, वैज्ञानिक यन्त्रो को अप्राप्य है। यह परमाणु सारी सृष्टि में प्रचुर मात्रा में फैले हैं। जीवात्मा की इच्छाओ और वासनाओं से प्रचोदित परमाणु ही "कर्म" का रूप धारण करता है।

जीव जड पदार्थ से सर्वदा और सर्वथा प्रभावित होता रहता है। लिखित शब्द, बनाई हुई तस्वीर, ढली हुई मूर्ति, इमारत और खण्डर, मेज, कुर्सी—सभी पदार्थों से भावो का उद्रेक होता है, भले ही वह उद्रेक हानिकर हो श्रेयस्कर, शरीर और मन को शान्ति देनेवाला हो, या विचलित करने वाला। ये अदृष्ट अगोचर "कर्म" का महान प्रभाव है। आत्मा कर्म को भिन्न रूप और स्वरूप में भिन्न तादाद और घनत्व में, भिन्न समय के लिये अपनी ओर आकृष्ट करती है और अपने में मिला लेती है। मन-वचन-काय की हर क्रिया की प्रतिक्रिया "कर्म-बन्धन" है। कर्मों का आना अथवा कर्मों द्वारा आत्मा का बँध जाना "बँध" कर्मों का रुकना "संवर" कर्मों से छुटकारा "निर्जरा" इन चार अवस्थाओं का निरूपण और विवेचन जैन आचार्यों ने बहुत ही सूक्ष्मता से और गणित के आधार पर किया है।

शरीर धारी आत्मा में वह शक्ति है कि वह कर्म-बन्धन से मुक्त हो सकती है और अपने स्वच्छ, निर्मल और केवल ज्ञान स्वरूप को प्राप्त हो सकती है। मुक्ति की गति को प्राप्त होने के लिये कई अवस्थाएं हैं। हर अवस्था भली प्रकार निर्धारित है। आत्मिक उन्नति मिथ्यात्व से सम्यग्दर्शन की ओर होती है, अज्ञान से ज्ञान की ओर, नियम-पालन से पूर्ण नियन्त्रण की ओर, वासनाओं और इच्छाओ के त्याग से मन-वचन-काय की स्पन्दन सहित शान्ति की ओर। यह प्रगति का मार्ग सबके लिये एक सा खुला है। मूल सिद्धान्त है **"जीओ और जीने दो**—और ऐसे जीओ की तुम्हारे जीने से औरो को कम से कम हानि हो।" इसी सिद्धान्त को मोटी तौर से अहिंसावाद कहते है।

अहिंसा का पूर्णतया पालन तो पहुँचे हुये साधु ही कर सकते है-वह साधु जिन्होने "अहम् का आत्मा का असली स्वरूप जान लिया है, जो अपने ध्यान में इतने मग्न है कि उनकी काया को कोई कुछ भी करे या उसके विषय में कुछ भी कहे, उन्हे कोई भी फरक नही पडता। उन्हे कोई भी असर नहीं होता। फिर भी अहिंसा का पालन सवही लोग यथाशक्ति कर सकते हैं। जितना अहिंसा का पालन किया जायगा, उतनी ही मन को सुख और शान्ति मिलेगी।

यदि हम इतिहास के पन्ने उलटे तो हमें स्पष्ट ज्ञात हो जायगा कि मनुष्य हिंसा से अहिंसा की ओर झुकता गया है। हमारे आदि पूर्वज नर-भक्षक थे। फिर समय जब मनुष्य ने मनुष्य को खाना छोड दिया और आखेट करके शशु-पक्षियो का मांस खाना शुरु कर दिया। फिर आगे चलकर मनुष्य ने आखेट के लिए पीछे जंगलो में भटकना छोड दिया, और एक जगह स्थिर होकर खेती करना शुरु कर दिया। धरती माता से अन्न उपजाने लगा। चरागाह और रमते गडेरिये का जीवन छोडकर, सॉस्कृतिक जीवन अपनाया। गाँव और शहर बसाये। कुटुम्ब की सीमाओ से निकलकर जाति और समाज की ओर देखने लगा। यह सव चिन्ह वढ़ती हुई अहिंसा और घटती हुई हिंसा का द्योतक है। ऐसा न होता तो मनुष्य-जाति का कभी भी अन्त हो गया होता, जैसे कि वहुत से निम्न श्रेणी के जीवो का हो गया है।

सभी पीर-पैगाम्बरो ने अहिंसा का मार्ग दिखलाया है। किसी ने भी हिंसा का प्रचार नही किया। और ऐसा हो भी कैसे सकता था। अहिंसा मनुष्य-जाति का नियम है, जैसे हिंसा पशु जाति का। आत्मा पशु में निद्रित अवस्था में रहती है और पशु शारीरिक-शक्ति के अतिरिक्त और कोई शक्ति जानता नही। परन्तु मनुष्य की मानवता उसे दूसरी ओर पुकारती है और आत्मिक वल का संकेत देती है।

—※—

"योद्धाओं में जैसे वासुदेव श्रेष्ठ है, पुष्पों में जैसे अरविन्द श्रेष्ठ हैं, क्षत्रियों में जैसे दन्तवक्र श्रेष्ठ हैं उसी तरह वर्द्धमान ऋषियों में श्रेष्ठ थे।

× × × ×

दानों में जैसे अभयदान श्रेष्ठ हैं, सत्य में जैसे निरवद्य वचन श्रेष्ठ हैं, तप में उत्तम ब्रह्मचर्य तप हैं, उसी तरह नायपुत्त लोगों में उत्तम श्रमण थे।

भगवान महावीर की साधना पद्धति

—मुनि श्री महेन्द्र कुमारजी "प्रथम"

भगवान् महावीर राजकुमार थे। उनके लिए सभी प्रकार के सुख-साधन प्रचुर मात्रा में उपलब्ध थे। वे उनका अपने लिए उपयोग भी करते थे। तीस वर्ष की अवस्था तक वे भौतिक सुविधाओ में रहे। सहसा उन्होने प्रव्रज्या का निर्णय लिया। सभी प्रकार की सुविधाओ को ठुकराकर वे कठोर चर्या के लिए निकल पडे। उनकी प्रतिज्ञा थी, मै व्युत्सृष्टकाय होकर रहूँगा अर्थात् शरीर की किसी भी प्रकार से सार-सम्भाल नही करूंगा। इसमें वे पूर्णतः सफल रहे।

दुरुह साधना

महावीर ने जिस साधना-पद्धति का अवलम्बन लिया था, वह अत्यन्त रोमांचक थी। वे अचेलक थे, तथापि शीत से त्रसित होकर वाहुओं को समेटते न थे, अपितु यथावत् हाथ फैलाये ही विहार करते थे। शिशिर-ऋतु में पवन और जोर से फुफकार मारता, कडकडाती सर्दी होती, तव इतर साधु उससे वचने के लिये किसी गर्म स्थान की खोज करते, वस्त्र लपेटते और तापस लकडियाँ जलाकर शीत दूर करने का प्रयत्न करते, परन्तु, महावीर खुले स्थान में नंगे वदन रहते और अपने वचाव की इच्छा भी नही करते। वही पर स्थिर होकर ध्यान करते। नंगे वदन होने के कारण सर्दी-गर्मी के ही नही, पर, दंश-मशक तथा अन्य कोमल-कठोर स्पर्श के अनेक कष्ट भी वे झेलते थे।

महावीर अपने निवास के लिये भी निर्जन झोपडियो को चुनते, कभी धर्मशालाओ को, कभी प्रथा को, कभी हाट को, कभी लुहार की शाला को, कभी मालियो के घरो को, कभी शहर को, कभी श्मशान को, कभी सूने घरो को, कभी वृक्ष की छाया को तो कभी घास की गंजियो के समीपवर्ती स्थान को। इस स्थानों में रहते हुए उन्हे नाना उपसर्गों से जूझना होता था। सर्प आदि विषैले जन्तु और गीध आदि पक्षी उन्हे काट खाते थे। उद्दण्ड मनुष्य उन्हें नाना यातनाएं देते थे, गाँव के रखवाले हथियारो से उन्हें पीटते थें और विषयातुर स्त्रियाँ उन्हें काम-भोग के लिए सताती थी। मनुष्य और तिर्यंचो के दारूण उपसर्गों और कर्कश-कठोर शब्दों के अनेक उपसर्ग उनके समक्ष आये दिन प्रस्तुत होते रहते थे। मारने-पीटने पर भी वे अपनी समाधि में लीन रहते।

आहार के नियम भी महावीर के वडे कठिन थे। नीरोग होते हुए भी वे मिताहारी थे। रसो में उन्हे आसक्ति न थी ओर न वे कभी रसयुक्त पदार्थों की आकाक्षा ही रहते थे। भिक्षा में रूखा-सूखा, ठण्डा, वासी, उडद सूखे भात, मथु, यवादि नीरस धान्य का जो भी आहार मिलता, उसे वे शान्त भाव से और सन्तोष-पूर्वक ग्रहण करते थे। एक वार निरन्तर आठ महीनों तक वे इन्ही चीजो पर रहे। पखवाडे, मास और छः-छः मास तक जल नही पीते थे। उपवास में भी विहार करते। ठण्डा-वासी आहार भी वे तीन-तीन, चार-चार, पाँच-पाँच दिन के अन्तर से करते थे।

शरीर के प्रति महावीर की निरीहता वडी रोमाचक थी। रोग उत्पन्न होने पर भी वे औषध-सेवन नहीं करते थे। विरेचन, वमन, तेल-मर्दन, स्नान और दन्तप्रक्षालन नहीं करते थे। आराम के लिये पैर नही दवाते थे।

आँखों में किरकिरी गिर जाती, तो उसे भी वे नही निकालते। ऐसी परिस्थिति में आँख को भी वे नही खुजलाते। वे कभी नीद नही लेते थे। उन्हें जब कभी नीद अधिक सताती, वे शीत में मुहूर्तभर चक्रमण कर निद्रा दूर करते। वे प्रतिक्षण जाग्रत रह ध्यान व कायोत्सर्ग में ही लीन रहते।

उत्कटक, गोदोहिका, वीरासन, प्रभृति अनेक आसनो द्वारा महावीर निर्विकार ध्यान करते थे। शीत में वे छाया में वैठकर ध्यान करते और ग्रीष्म में उत्कुटुक आदि कठोर आसनो के माध्यम से चिलचिलाती धूप में ध्यान करते। कोई उनकी स्तुति करता और कोई उन्हें दण्ड से तर्जित करता या वालो को खीचता या उन्हे नोचता, वे दोनो ही प्रवृत्तियो में समचित्त रहते थे। महावीर इस प्रकार निर्विकार, कषाय-रहित, मूर्छा-रहित, निर्मल ध्यान और आत्म-चिन्तन में ही अपना समय विताते।

महावीर दीक्षित हुए, तव उनके शरीर पर नाना प्रकार के सुगन्धित द्रव्यो का विलेपन किया हुआ था। चार मास से भी अधिक भ्रमर आदि जन्तु उनके शरीर पर मंडराते रहे, उनके मांस को नोचते रहे और रक्त को पीते रहे। महावीर ने तितिक्षाभाव की पराकाष्ठ कर दी। उन जन्तुओ को मारना तो दूर, उन्हे हटाने की भी वे इच्छा नही करते थे।

महावीर ने इस प्रकार की शारीरिक कृच्छ्र साधना पर इतना वल क्यो दिया तथा शरीर के स्वभावो पर वे विजय किस प्रकार हुए, जवकि सामान्यतः कोई भी व्यक्ति शरीर के धर्मों की अवगणना नही कर सकता? ये दो प्रश्न ही महावीर की साधना-पद्धति की विभिन्न भूमिकाओं पर प्रकाश डालते है।

कष्ट-साध्य साधना क्यों?

सभी अध्यात्मवादियो का दृढ़ विश्वास है कि आत्मा शरीर रूप कप्सूल में आवद्ध है। चेतन पर जड का यह आवरण इतना सघन हो गया कि संस्कार विकार में बदल गये हैं और चैतन्य की क्रिया विकारो को सवल करने में प्रयुक्त होने लगी है। साधना-चैतन्य और जड की इस दुरभिसधि को समाप्त करने की क्रिया का आरम्भ करती है। उसकी पहली व्यूह-रचना शरीर के साथ होती है। शरीर के द्वारा आत्मा के होने वाले संचालन को रोकने के लिये उपक्रम आरम्भ होता है और सारा नियन्त्रण आत्मा के केन्द्र से उद्भूत होने लगता है। ऐसी स्थिति में अनिवार्यतया अपेक्षा हो जाती है, कृच्छ्र साधना की। एक वार उससे छटपटाहट अवश्य होती है, क्योंकि जन्म-जन्मान्तरों से लगा हुआ अनुवन्ध-टूटना प्रारम्भ होता है। किन्तु, ऐसा हुए विना जड-चेतन का पृथक्करण नहीं भी हो सकता।

प्राण-वायु पर विजय

कुछ कष्ट-साध्य साधना से विचलित हो गये। उन्हें अपने मार्ग को भी वदलना पडा। महावीर अपने निर्धारित क्रम मे सफल होते गये। उन्हें मार्गान्तरण की आवश्यकता नही हुई। दोनो का एक ही उद्देश्य था। फिर इतना अन्तर क्यों हुआ? इस प्रश्न का उत्तर पाने के लिये कुछ यौगिक क्रियाओ की गहराई में उतरना आवश्यक होगा। साधक को सवसे पहले भूख-प्यास. सर्दी-गर्मी आदि शरीर की अनिवार्य आवश्यकताओं पर विजय पाना होता है। इन सवका सम्वन्ध है, प्राणवायु से। शरीर में पाँच प्रकार की वायु होती है। प्राण-वायु उसमें उत्कृष्ट है और उसका सम्वन्ध मन की सूक्ष्म क्रियाओ के साथ है। यही वायु स्नायुयों की प्राण-शक्ति को प्रत्येक कार्य में उद्वुद्ध, प्रेरित तथा क्रियाशील करती है। किन्तु, एक प्रक्रिया ऐसी होती है, जिसके द्वारा क्रियाशीलता को उद्वोध में वदला जा सकता है। जव वह इस प्रकार परिवर्तित हो जाती है, शारीरिक अपेक्षाओं की पूर्ति न होने पर भी

व्यथा की अनुभूति नही होती। फिर देह होता है, किन्तु, देहाध्यास नही होता। महावीर ने इसी प्रक्रिया का आरम्भ किया था और वे इसके द्वारा शरीर-विजय में पूर्णतः सफल हुए। शरीर उनके अधीन रहा, वे शरीर के अधीन नही रहे।

एक प्रवाह चलता है। उसे यदि वदला नही जाता हैं, तो जो होता आया है, वही भविष्य में चलता रहेगा। उसे वदलने के लिये जितना श्रम अपेक्षित होता है, उससे अधिक मार्गान्तरण के चयन में सजगता अपेक्षित होती है। महावीर जव प्रव्रजित हुए, चालू प्रवाह को वदलने की उस प्रक्रिया को ही उन्होंने अपना लक्ष्य वनाया और उसमें वे सफल भी हुए। यही कारण है कि उग्र तपश्चरण में भी वे कभी म्लान नही हुए।

शरीर-विज्ञान के अनुसार भी जव-जब रक्त की गति में वेग और गतिमंदता आती है, तव-तव सम्वन्धित अन्य अवयव प्रभावित होते है और किसी विकार का आरम्भ हो जाता है। यह विकार रोग के रूप में भी व्यक्त होता है और इन्द्रियज उद्वेग, आवेश, अहं आदि के रूप में भी प्रकट होता है। प्राण-वायु का जागरण तथा अन्य चार प्रकार की वायुओ की श्लथता रक्त की सम स्थिति को उजागर करती है। यही से सम्वन्धित नाना अनुभूतियो गौण हो जाती है और स्व-केन्द्रिता जागरूक। महावीर इस क्रिया में आरम्भ से ही निष्णात थे, इसीलिए कष्ट-साध्य साधना में उन्हे कष्टो की अनुभूति नही होती थी। जनता को भी इसका ही प्रशिक्षण देते थे। मानसिक उद्वेगो के इस वर्तमान युग में प्राणवायु पर विजय पाने की इस प्रक्रिया की अत्यन्त आवश्यक है।

—⁂—

भगवान् महावीर, प्रेरणा के अखण्ड स्रोत

दर्शनाचार्य साध्वी श्री चंदनाजी

चैत्र शुक्ल त्रयोदशीका मंगलमय दिन ।

भगवान महावीर का जन्मदिन !

अतः उत्सव का दिन !

दिन का अर्थ है अधकार का मिट जाना और प्रकाश का आना । केवल बाहर ही अंधकार नही है और न बाहर ही प्रकाश है । मनुष्य के जीवन में भी अंधकार और प्रकाश है । आज से ढाई हजार वर्ष पूर्व बिहार की पुण्यभूमि में भगवान महावीर का जन्म हुआ था । और कहना चाहिए विषमता विवाद और वैर के अधकार को मिटाकर समानता संवाद और क्षमा के तेज पुंज भगवान महावीर का जन्म हुआ और उन्होने उस अमृत प्रकाश को जन-जीवन में विकीर्ण किया था ।

प्रतिवर्ष इसी मंगलमयी भावना के साथ हम जन्म दिन मनाते हैं । इस घटना को ढ़ाई हजार वर्ष व्यतीत हो चुके हैं और यह दिन समानता, मैत्री का प्रतीक बनकर जिसने हमें व्यक्तिगत और सामूहिक विकास की आज भी प्रेरणा देता है ।

किसी भी महापुरुष का जन्म-जयन्ति मनाने का अर्थ है सद्वृत्तियो का विकाश ! हमें आज के दिन जन्मोत्सव के मूल में निहित इस भावना को अक्षुण्ण रखने का संकल्प करना है । इस संकल्प पर ही उत्सव की सार्थकता सिद्ध होगी । यह दिन भारतीय जन मानस के लिए प्रेरणापूर्ण और प्रकाश पूर्ण बने । ढ़ाई हजार वर्ष पूर्व भगवान महावीर ने जिस महान संदेश को प्रवाहित किया था आज उसकी अत्यन्त आवश्यकता है वर्गभेद, वर्णभेद, जातिभेद, प्रांतभेद और भाषाभेद सत्ता की दौड़, अमीरों की आवश्यकताएं, गरीवों के अभाव, दलित, पीड़ित और शोषित वर्ग के प्रति उपेक्षा, नए और पुराने विचारो के संघर्ष, इन प्रश्नों ने जीवन की जडे हिला दी है । ऐसे विकट समय में मैत्री करुणा और सहयोग की भावना से ही प्रश्नो का हल ढूढा जा सकता है । भगवान महावीर ने यही कहा था—प्रश्न और नही है । **समस्या कोई नहीं है । बाहर के भेद तो मिटने से रहे और अगर बाहर से समानता को प्रतिष्ठित भी किया गया और मनुष्य की भावनात्मक समानता की उपेक्षा की तो उस आरोपित समानता से मनुष्य का जोवन निष्कंटक नहीं हो सकता ।** आज भी हम देख रहे हैं समानता के हजार-हजार प्रयास के बाद विषमता उतनी ही अधिक है । और उस विसमता से निष्पन्न विषम समस्याएं भी उतनी ही है ।

आज के इस महान मंगलमय दिन पर पुनः हम गंभीरता से भगवान महावीर के उपदेश पर विचार कर हमें अपनी समाज रचना के लिए कुछ महत्वपूर्ण संकेत एवं संकल्प लेने की आवश्यकता है ।

निजी स्वार्थों से ऊपर उठकर मनुष्य जाति के व्यापक हितो की सुरक्षा के लिए प्रयास करने का मार्ग खोजे । आज सामान्य जनता नही जानती है कि उसे किधर जाना है महावीर संदेश से उदात्त मार्ग-दर्शन लें, तो हमें प्रकाश, प्रेरणा और प्रगति प्राप्त हो सकती है ।

—*::*—



भावना

रचयिता— हीराचन्द वोहरा बी· ए एल एल बी विशारद बजवज

कर्त्तव्य पथ पर हम चलें,
सबकी यही हो कामना।
हँसकर सहें सब आपदा
जीवन की यह हो साधना।
न बुरा किसी का करें कभी, मन में रहे यह भावना।
सुख से जिएँ जग मे सभी, प्रभु से यही इक प्रार्थना ॥

जग मे दुखी इन्सान की
सेवा करें यह चाहना
विश्वास हो प्रभु में सदा
है बस यही इक अर्चना ॥
चाहे प्राण जाएँ या रहे, अन्याय से बचते रहे
संघर्ष के हर कदम पर, बढ़ते रहें हँसते रहे ॥

आपस की रंजिश दूर हो,
सब प्रेम से मिल कर रहें,
सुख शान्ति का वातारण
इस विश्व में हरदम रहे ॥
पापों से हम बचते रहें, बस इक यही है चाहना
बन जाऊँ प्रभु मैं आपसा, मेरी यही इक भावना ॥

—※※—

समदृष्टि भगवान महावीर

प्रो० पृथ्वीराज जैन, एम० ए०, शास्त्री अम्बाला शहर

भारतीय धर्म एवं दर्शन के मर्मज्ञ अब इस विषय में प्रायः एकमत है कि इस पवित्र भूमि पर अतीव प्राचीन काल से दो सास्कृतिक धाराएं प्रवाहित रही है—वैदिक अथवा ब्राह्मण, श्रमण दोनो में कौन सी पूर्ववर्ती है, यह अभी विवाद का विषय है। तदपि इस तथ्य की उपेक्षा नही की जा सकती कि दोनो समकालीन अवश्य रही है। उपलब्ध साहित्य में ऋग्वेद प्राचीनतम माना जाता है। उसके अध्ययन से यह स्पष्ट है कि उस समय वेद-विरोधिनी विचार धारा की भी प्रबलता थी। उस विचारधारा का प्रतिनिधित्व वर्तमान ज्ञात धाराओ में जैन धर्म सबसे अधिक करता है। बौद्ध-धर्म का उदय पर्याप्त समय बाद हुआ और साख्य दर्शन, वैदिक दर्शन में ही समाविष्ट हो गया। ऐसे भी विद्वान हैं जो युक्ति और प्रमाण के आधार पर जैन विचार धारा को भारत की मौलिक विचार धारा मानते है। वेदानुयायी आर्य बाहिर से आए, यह निश्चित प्रायः तथ्य है।

वैदिक व श्रमण परम्परा :—

वैदिक और श्रमण परम्परा में जो मूल भेद है, उसे एक शब्द में समया या समत्व से प्रतिपादित किया जा सकता है। **श्रमण धर्म का आचार-विचार समता की आधार शिला पर स्थिर है जब कि वैदिक आचार-विचार के मूल में वैषम्य अथवा विषमता के दर्शन होते हैं।** यत्र-तत्र श्रमण परम्परा में असमानता की झलक दृष्टिगोचर होगी और वैदिक परम्परा में समता पोषक उल्लेख उपलब्ध होगे, परन्तु वे अपवाद रूप अथवा आयतीत हैं। **वैदिक जीवन वर्णाश्रम धर्म पर आधारित है जो मानव-मानव में उच्च-नीच की दिवारें खड़ी करता है। श्रमण जीवन अथवा जैन तीर्थंकरों की संघ-व्यवस्था, समानता समानाधिकार मानव क्या प्राणीमात्र के प्रति मैत्रीभाव पर अवलम्बित है।** इस लेख में जैनो के इस युग के चरम तीर्थंकर भगवान महावीर द्वारा भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में प्रतिपादित समता परकिंचित् प्रकाश डालने का प्रयास किया जाएगा।

श्रमण शब्द का अर्थ ही इस बात का द्योतक है कि यह विचार-धारा विश्व में समता की सन्देशवाहक है। श्रमण को प्राकृत में 'समन' कहते हैं। इससे तीन अर्थों की ध्वनि परिस्फुटित होती है—**सम, शम, श्रम**। सम का अर्थ समानता किंवा समभाव का है। 'मिन्ती में सव्व भूएसु,—समस्त प्राणियो से मेरा मैत्री भाव है, मेरा किसी से भी वैर भाव नही, यह भावना इसी सम का सुमधुर फल है। **शम का अर्थ शमन, शान्ति उपशम है।** आत्मा में उपसम भाव का उदय तभी सम्भव है जब हम हरेक प्राणी को आत्मोपम्य दृष्टि से देखें। उपशम तभी होगा जब राग द्वेष का नाश होगा। राग द्वेष उस अवस्था में होते हैं जब हम प्राणियो को समान दृष्टि से नही देखते, किसी में ममता भाव रखते हैं और किसी से वैर-विरोध पनपने देते हैं। भगवान महावीर कहते हैं—'उवसमसार सामण्णं' अर्थात् श्रमण धर्म का सार उपशम या शान्ति भाव है। अतः शम का ध्येय भी सम का पोषण है। श्रम का भावार्थ पुरुषार्थ और तप आदि से है। अनादि काल से सांसारिक आत्मा कर्ममल से अवलिप्त होने के कारण मोह एवं तद्जनित विषमता से लिप्त है। उस अवलेप को दूर करने का साधन श्रम किंवा तप है जो कर्मों के आवरण को दूर कर हमें समता-आराधना की ओर अग्रसर करता हुआ शुद्ध परमात्म-स्वरूप की अनुभूति कराएगा। इस प्रकार

श्रम समभाव का मानो पर्यायवाची शब्द है। भगवान महावीर जब गौतम को यह कहते हैं कि जो प्राप्त का समविभाजन का नही करता, उसकी मुक्ति नही होती, तब यह सुस्पष्ट हो जाता है कि वे कितने महान् समतावादी थे और किस प्रकार साम्य को आध्यात्मिक एवं सामाजिक जीवन का मूलाधार समझते थे। आचारांग में स्पष्ट है कि जो तीर्थंकर भूतकाल में हो गये, इस समय है या भविष्य में होंगे वे सभी उपदेश देते हैं कि किसी प्राणी का न तो वध करना चाहिये ओर न उमे किसी प्रकार पीडित करना चाहिए। **भ० महावीर की समता किसी विशेष समुदाय, समाज, देववर्ग, मानव वृन्द या दानव समूहतक ही सीमित न थी, वह छोटे से छोटे प्राणी के प्रति भी समान रूप से व्यवहृत थी।** हम उनकी समदृष्टि का अनेक क्षेत्रों में स्पष्ट रूपेण अवलोकन कर सकते हैं।

सर्व प्रथम हम आध्यात्मिक क्षेत्र को लें। सिंह चिह्नवाले वर्धमान महावीर की सिंह गर्जना थी कि प्रत्येक आत्मा में परमात्मा वनने की शक्ति है। कहाँ तो वैदिक परम्परा की उस युग मे यह मान्यता कि 'स्त्री शूदौनाधीताम्' नारीव शूद्रो को पढ़ाया ही न जाय, और कहाँ महावीर का उद्घोष कि साधना द्वारा हरेक मोक्ष या मुक्ति का अधिकारी है। मोक्ष के द्वार लिङ्ग, ओर जाति के बिना प्रत्येक साधक के लिए खुले हैं। वे मानते थे कि कोई भी आत्मा शत प्रतिशत दुष्ट नही, आध्यात्मिक विकास के अंकुर सब में विद्यमान हैं। उन्हें परिस्फुटित करने के लिए आलोक और ज्ञान रूपी वर्षा की आवश्यकता है। प्रत्येक वाल्मीकि कभी बलिया डाकू था और प्रत्येक बलिया महर्षि वाल्मीकि वन सकता है। कषायमुक्तिः किलमुक्तिखे—मुक्ति किसी विशेष धर्म या मान्यता अथवा आचार में नही, आन्तरिक कषाय रूपी शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने में है। नवकार मंत्र में इसीलिए किसी व्यक्ति विशेष को चयन न कर गुणधारी पञ्च परमेष्टी को नमस्कार किया जाता है। आचार्य हेमचन्द्र कहते हैं कि भवचक्र के वीजांकुर राग-द्वेष जिसके नष्ट हो गए हो वह ब्रह्म हो, शिव हो, जिन हो, उसे मेरा नमस्कार। आचार्य हरिभद्र का कथन है—महावीर के प्रति मेरा पक्षपात नही, कपिलादि दार्शनिको से द्वेष नही, जिसका कथन युक्तियुक्त हो उसे माना जाय।

सामाजिक क्षेत्र पर दृष्टिपात करें। महावीर ने उच्च स्वरेण घोषणा की कि मनुष्य कर्म से ब्राह्मण, कर्म से क्षत्रिय, कर्म से वैश्य और कर्म से शुद्र होता है, जन्म से कदापि नही। वाह्य वेश भूषा और जन्मजात उच्च-नीच भाव पर कुठारघात करते हुए उन्होंने कहा—ओम् का जाप करने से कोई ब्राह्मण नही होता, सिर मुंडा लेने से कोई साधु नही वन जाता, केवल कुशावस्त्र किसी को तपस्वी नही वनाते और नही अरण्य निवासी किसी को मुनि के सिंहासन पर विठा देता है। ब्रह्मचर्य से ब्राह्मण, समता से साधु, तपश्चर्या से तपस्वी और ज्ञान से मुनि होता है। उन्होंने साधु-साध्वी, श्रावक, श्राविका रूपी चार स्तम्भो पर आश्रित संघ का संगठन कर गृहस्थ सन्यास दोनो जीवन में नारी को समानाधिकार प्रदान किया। उनका धर्म सभी वर्णों, जातियों व सम्प्रदायो के लिए था। वे मानते थे कि दुराचारी साधु को उसका मुनिवेश रक्षित नही कर सकता। आन्तरिक पवित्रता विहीन वाह्य क्रियाचार की व्यर्थता वे सुरीत्या समझते थे। वे कहा करते थे कि यदि वाहरी स्नान ही मुक्ति का दाता हो तो जलचर जीव सर्व प्रथम मुक्त हो जाते।

अन्य प्राणियों के प्रति हमारा दृष्टिकोण कैसा हो? आचारांग में आदेश है कि **दूसरों को उसी दृष्टि से देखो जिससे निज आत्मा को देखते हो।** महावीर की मान्यता थी कि दूसरे प्राणी केवल जीए, यही पर्याप्त नही, प्रद्युत हमें यह प्रयास करना है कि वे सुखपूर्वक जी सकें। उनका आदेश था कि यदि हम शरीर से किसी का हित करने में असमर्थ हों तो अन्तरात्मा में भावना-चतुष्टय का ही आराधना करें। वे चार भावनाएँ हैं—सभी प्राणियो से मैत्री भाव, गुणीजनों के लिए प्रमोद-हर्ष का भाव, दुःखियों के प्रति करुणा भाव, विरोधियों के प्रति माध्यस्थ अथवा तटस्थ भाव। निस्सन्देह ये सभी विचार महावीर को सम-दृष्टि सिद्ध करते हैं।

इससे भी एक पग आगे जाकर भगवान् महावीर अन्य धर्मों के प्रति भी समता पर आधारित उदार दृष्टि-

कोण अपनाने का आग्रह करते हैं। **स्याद्‌वाद समदृष्टि से प्रत्येक मान्यता में सत्यांश की, गुणात्मकता की खोज करता है।** वह यह कहता है कि जो मेरा, वह सच्चा यह ढिंढ़ोरा मत पीटो। यह कहो कि जो सच्चा वह मेरा। कितनी विशाल हृदयता, सहिष्णुता और गुणग्राहकता है इस स्याद्वाद सिद्धान्त में। महावीर के उपदेश में कही भी ऐसी लक्ष्मण रेखा नही, जिसका उलघन किसी के लिए वर्जित हो। उन्होने मानव-जीवन की श्रेष्ठता, पवित्रता, परमात्मरूपकता पर बल दिया।

अन्त में श्रमण शब्द की कुछ व्याख्याएँ इस मान्यता को संपुष्ट करती हैं कि भगवान् महावीर पूर्णतः समदृष्टि थे। "श्रामण ममता, अहंकार से रहित, आसक्ति विहीन होता है। वह सब में समान भाव रखता है। लाभालाभ, सुख दुःख, जीवनमरण, निन्दा प्रशंसा, मानापमान में समभाव ही रहता है।" "जो किसी से द्वेष नही करता, सब से प्रेम करता है, वही सच्चा श्रमण है।" "श्रमण न इस लोक की कामना करता है न परलोक की। सर्प हो या चन्दन, आहार हो या अनाहार, वह समभाव ही रहता है।"

"जैसे मुझे दुःख अनिष्ट है वैसे हो दूसरे प्राणियो को। इस प्रकार जो न तो हिंसा करता है और सबके प्रति समान अथवा तुल्य व्यवहार करता है, वहो श्रमण है।"

—**—

With

best Compliments

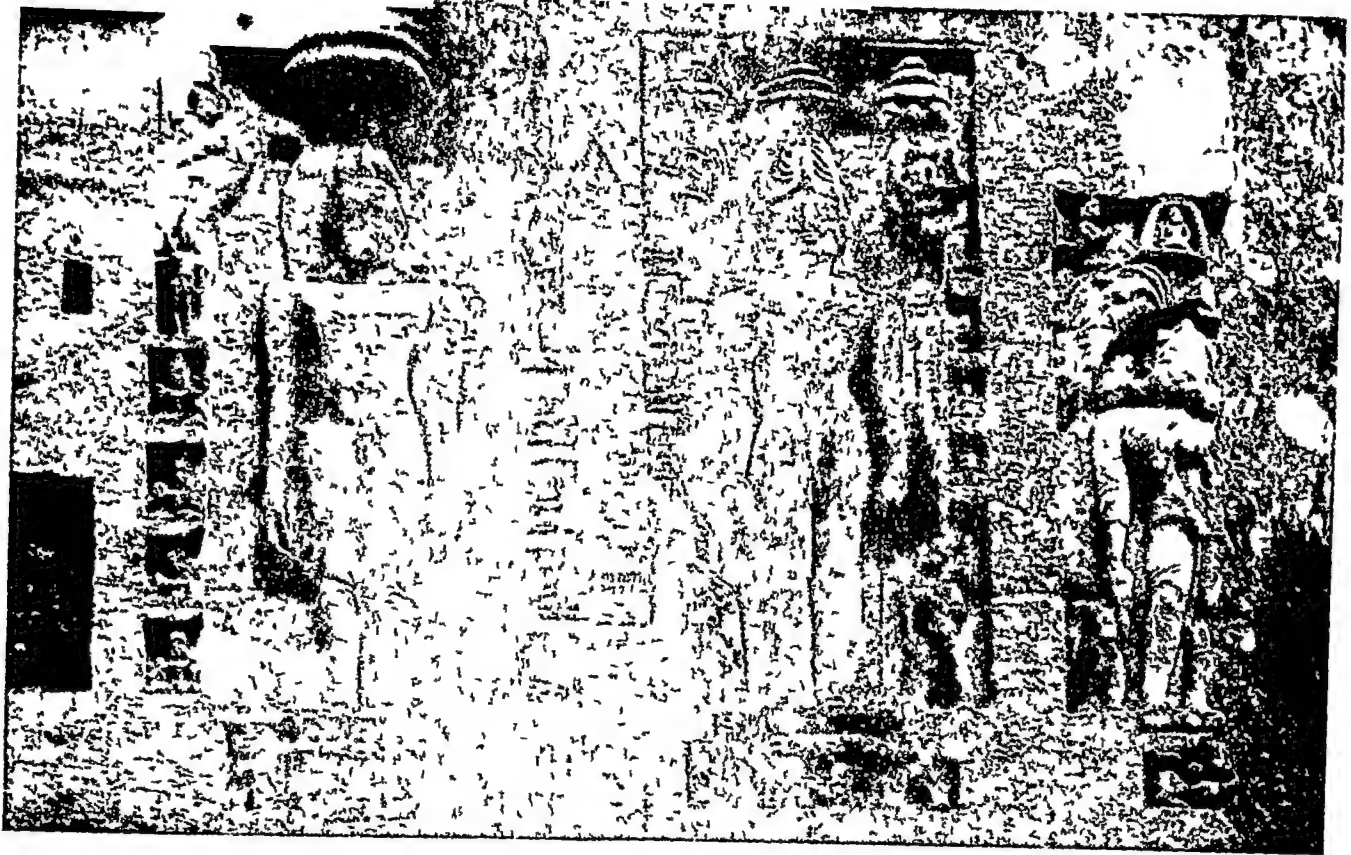
from.



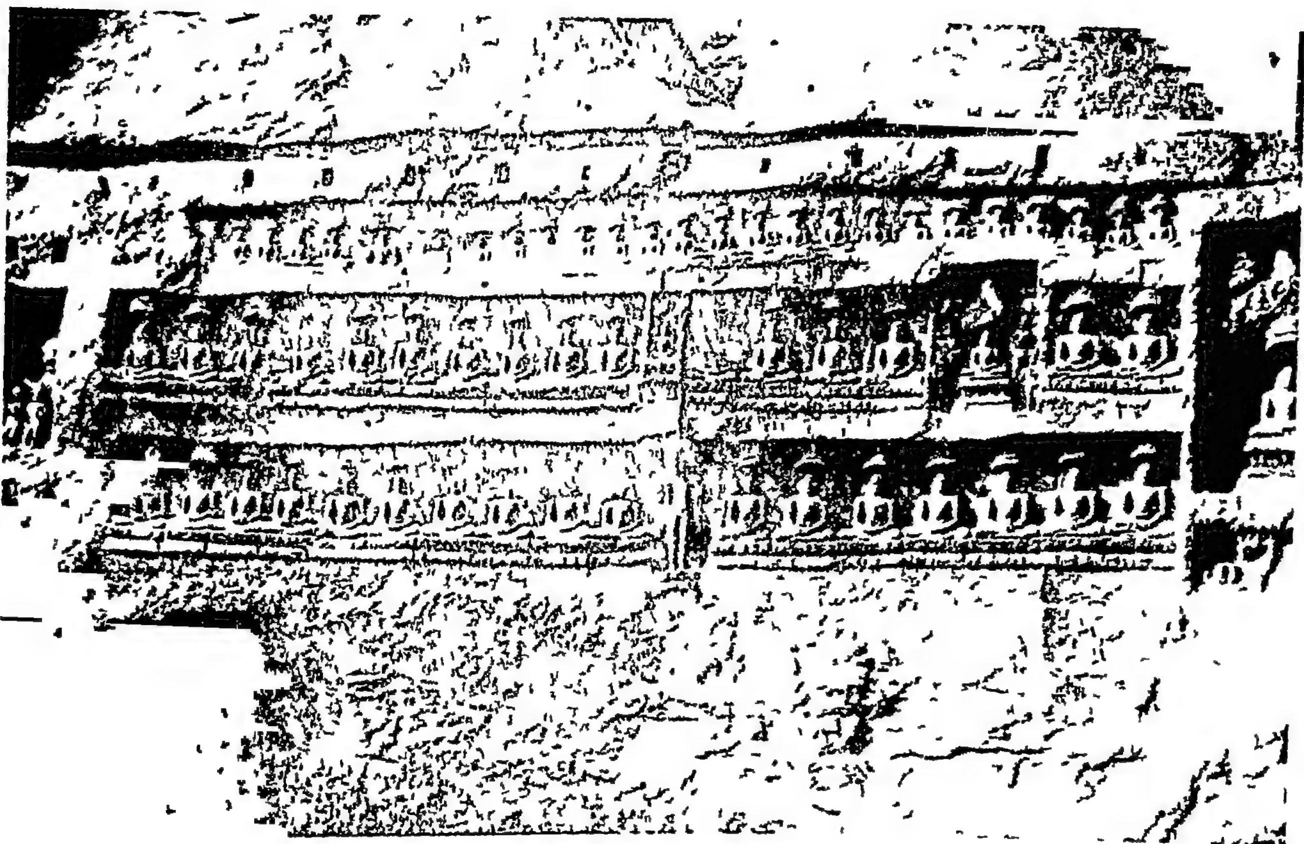
M/s Keshavlal J. Khanderia

167, Old China Bazar Street,

Calcutta-7.

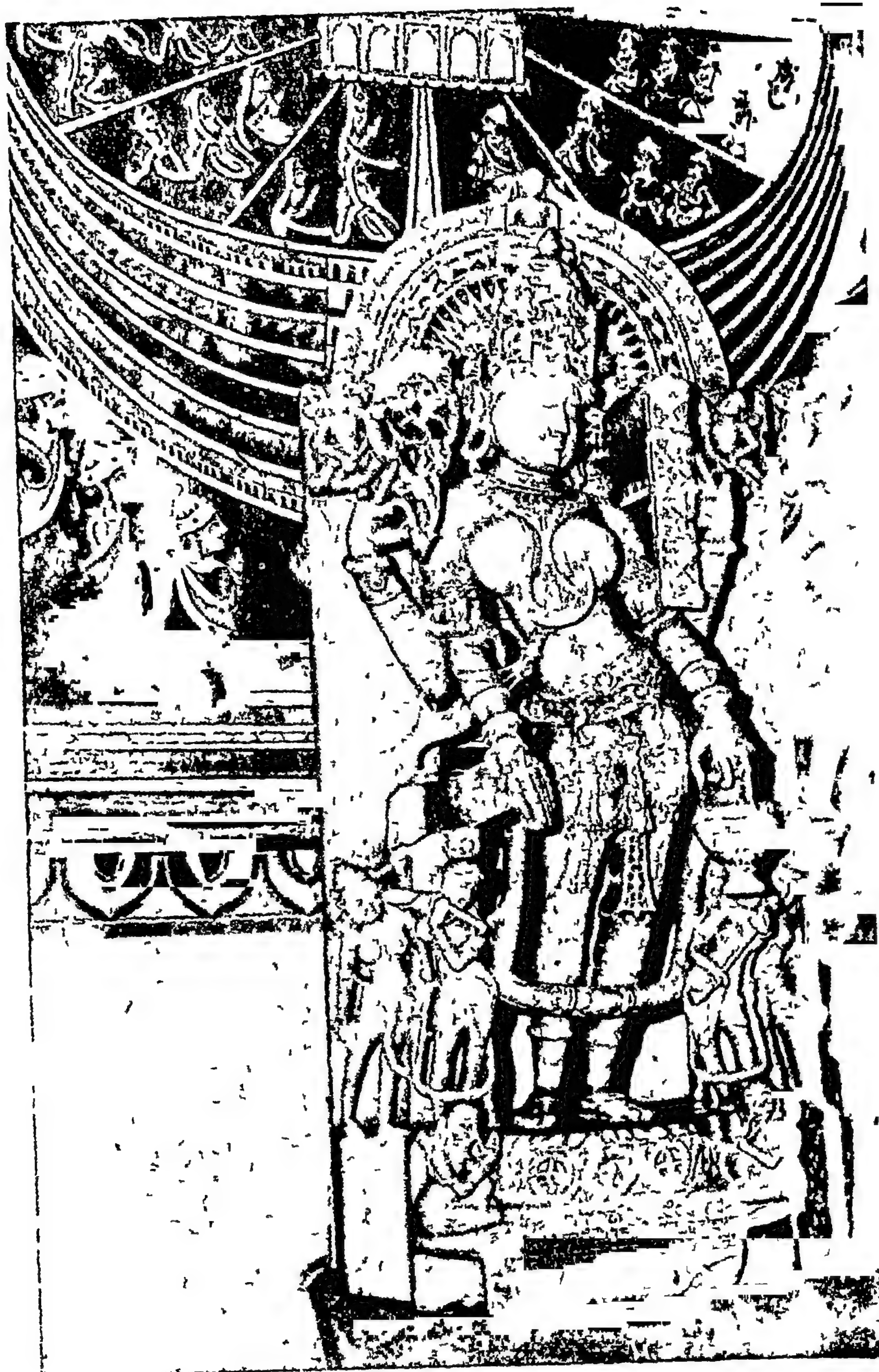


Risabhanath with Ambika Khandagiri, Orissa



Rock-cut Sculptures, Kalugumalai, Tamilnad

Courtesy—Jain Bhawan



लाडनूं मन्दिर स्थित जैन सरस्वती की मूर्ति (१०वी शताब्दी)

क्षमा और अहिंसा की सर्वग्राह्यता

डा० दरबारीलाल कोठिया

शान्ति और सुख ऐसे जीवन—मूल्य है जिसकी चाह मानवमात्र को रहती है। अशान्ति और दुःख किसी को भी इष्ट नही, ऐसा सभी का अनुमान है अस्पताल के उस रोगी से पूछिये, जो किसी पीडा से कराह रहा है और डाक्टर से शीघ्र स्वस्थ होने के लिये कातर होकर याचना करता है। वह रोगी यही उत्तर देगा कि हम पीडा की उपशान्ति और चैन चाहते हैं। उस गरीब और दीन-हीन आदमी से प्रश्न करिये, जो अभावों से पीड़ित है। वह भी यही जवाव देगा कि हमें ये अभाव न सताये और हम सुख से जियें। उस अमीर और साधन सम्पन्न व्यक्ति को भी टटोलिये जो वाह्य साधनो से भरपूर होते हुए भी रात-दिन चिन्तित है। वह भी शान्ति और सुख की इच्छा व्यक्त करेगा। युद्ध भूमियो में लड रहे उस योद्धा से भी सवाल करिये जो देश की रक्षा के लिये प्राणोत्सर्ग करने के लिये उद्यत है। उसका भी उत्तर यही मिलेगा कि वह अन्तरंग में शान्ति और सुख का इच्छुक है। इस तरह विभिन्न स्थितियो में फंसे व्यक्ति-व्यक्ति की आन्तरिक चाह शान्ति और सुख की प्राप्ति की मिलेगी। मनुष्य संवेदनशील है। यह संवेदनशीलता हर मनुष्य में चाहे वह किसी भी देश, किसी भी जाति और किसी भी वर्ग का हो, पायी जायेगी। इसका संवेदन होने पर उसे शान्ति और सुख मिलता है तथा अनिष्ट का संवेदन उसके अशान्ति और दुःख की परिचायक है।

इस सर्वेक्षण से हम इस परिमाण पर पहुँचते है कि मनुष्य के जीवन का मूल्य शान्ति और सुख है। यह वात उस समय और अधिक अनुभव में आ जाती है जव हम किसी युद्ध से विरत होते हैं या किसी भारी परेशानी से मुक्त होते हैं। दर्शन और सिद्धान्त ऐसे अनुभवों के आधार से ही निर्मित होते और शाश्वत वन जाते हैं।

जव मन में क्रोध की उदभूति होती है तो उसके भयंकर परिणाम दृष्टि गोचर होते हैं। अमेरिका ने जब जापान पर युद्ध में उसके दो नगरो को वमो से ध्वस कर दिया तो विश्व ने उसकी भर्त्सना की। फलतः सव ओर से शान्ति की चाह की गयी। क्रोध के विषैले कीटाणु केवल आस-पास के वातावरण और क्षेत्र को ही ध्वस्त नही करते खुद का भी नाश कर देते हैं। हिटलर और मुसोलनी के क्रोध ने उन्हें विश्व के चित्र पर से सदा के लिये अस्त कर दिया। दूर न जाये, पाकिस्तान ने जो क्रोधोन्माद का प्रदर्शन किया उसने पूर्वी हिस्से को उससे हमेशा के लिये अलग कर दिया। व्यक्ति का क्रोध कभी-कभी भारी से भारी हानि पहुँचा देता है। इसके उदाहरण देने की जरूरत नहीं है यह सर्वविदित है।

क्षमा एक ऐसा ही अस्त्र वल है जो क्रोध के वार को निरर्थक ही नही करता, क्रोधी को नमित करा देता है। क्षमा से क्षमावान की रक्षा होती है, उससे उनकी भी रक्षा होती है, जिनपर वह की जाती है। क्षमा वह सुगंध है जो आस-पास के वातावरण को महका देती है और धीरे-धीरे हरके हृदय में वह वैठ जाती है। क्षमा भीतर से उपजती है, अतः उसमें भय का लेशमात्र भी नही रहता। वह वीरो का वल है, कायरो का नही, कायर तो क्षण-क्षण में भयभीत और अविजित होता रहता है। पर क्षमावान निर्भय और विजयी होता है। वह ऐसी विजय प्राप्त करता है जो शत्रु को भी उसका बना देती है। क्षमावान को क्रोध आता नही, उससे वह कोसो दूर रहता है।

वास्तव में क्षमा-क्षमता,सहन शीलता मनुष्य का एक ऐसा गुण है जो दो नही, तीन नही, हजारो, लाखों और करोडों मनुष्यी को जोडता है उन्हें एक-दूसरे के निकट लाता है। संयुक्त राष्ट्र संघ जैसी विश्व संस्था इसी केवल पर खडी हो सकी है और जब तक उसमें यह गुण रहेगा तब तक वह बना रहेगा।

तीर्थंकर महावीर में यह गुण अतीव था। फलतः उनके निकट जाति और प्रकृति विरोधी प्राणी-सर्प-नेवला, सिंह-गाय जैसे भी आपसी वैर भाव को भूलकर आश्रय लेते थे। मनुष्यों का तो कहना ही क्या ? उनकी दृष्टि में मनुष्य मात्र एक थे। हाँ, गुणो के विकास की अपेक्षा उनका दर्जा ऊँचा होता जाता था। और अपना स्थान-ग्रहण करता जाता था। जिनकी दृष्टि पूत हो जाती थी वे सम्यक्दृष्टि, जिनका दृष्टि के साथ ज्ञान पवित्र (असद्‌भावमुक्त) हो जाता था वे सम्यकज्ञानी और जिसका दृष्टि और ज्ञान के साथ आचरण भी पावन हो जाता था वे सम्यक चारित्री कहे जाते थे और वैसा ही उन्हे मान सम्मान मिलता था।

क्षमा यथार्थ में अहिंसा की ही एक प्रकाशपूर्ण किरण है, जिससे अन्तरतम सुआलोकित हो जाता है। अहिंसक प्रथमतः आत्मा ओर मन को वलिष्ठ वनाने कें लिये इस क्षमा को भीतर से विकसित करता, गाढ़ा वनाता और उन्नत करता है। क्षमा के उन्नत होनेपर उसकी रक्षा के लिये हृदय में कोमलता सरलता और निर्लोभ-वृति की बाकी (रक्षकावलि) रोपता है। अहिसा को ही सर्वांगपूर्ण वनाने के लिये सत्य, अचौर्य, शील और अपरिग्रह की निर्मल एवं उदान्त वृतियो का भी वह अहर्निश आचरण करता है।

अहिंसा का वास्तिवक स्वरूप

सामान्यतया अहिंसा उसे कहा जाता है जो किसी प्राणी को न मारा जाय। परन्तु वह अहिंसा की बहुत स्थूल परिभाषा है। तीर्थंकर महावीर ने अहिंसा उसे वतलाया जिससे किसी प्राणी को मारने का न मन में विचार आये, न वाणी से कुछ कहा जाय और न हाथ आदि की क्रियाए की जाये। तात्पर्य यह कि हिंसा के विचार, हिंसा के वचन और हिंसा के प्रयत्न न करना अहिंसा है। यही कारण है कि एक व्यक्ति हिसा का विचार न रखता हुआ ऐसे वचन वोल देता है या उसकी क्रिया हो जाती है जिससे किसी जीव की हिंसा सम्भव है तो उसे हिंसक नही माना गया है। प्रमत्तयोग कषाय से होनेवाला प्राण व्ययरोपण ही हिंसा है। हिंसा और अहिंसा वस्तुतः व्यक्ति के भावो पर निर्भर है। व्यक्ति के भाव हिंसा के है तो वह हिंसक है और यदि उसके भाव हिंसा के नही हैं तो वह अहिंसक है। इस विषय में हमें वह मछुआ और कृषक उदाहरण है मछुआ जो जलाशय में जाल फैलाये बैठा है और प्रतिक्षण मछली ग्रहण का भाव रखता है, पर मछली पकड मे नही आती तथा कृषक जो खेत जोतकर अन्न उपजाता है और किसी जीव के घात का भाव नही रखता, पर अनेक जीव खेत जोतने से मरते हैं। वास्तव में मछुआ के क्षण-क्षण के परिणाम हिंसा के होने से वह हिंसक कहा जाता है और कृषक के भाव हिंसा के न होकर अन्न उपजाने के होने से वह अहिंसक माना जाता है। महावीर ने हिंसा-अहिंसा को भाव प्रधान वतलाकर उनकी सामान्य परिभाषा से कुछ ऊँचे उठकर उक्त सुक्ष्म परिभाषाएं ऐसी है जो हमे पाप और वंचना से बचाती है तथा तथ्य को स्पर्श करती है।

अहिंसक दृष्टिकोण व आवश्यक हिंसा

अहिंसक खेती कर सकता है, व्यापार धन्धे कर सकता है और जीवन रक्षा तथा देश रक्षा के लिये शस्त्र भी उठा सकता है क्योकि उसका भाव आत्मरक्षा का है, आक्रमण का नही। यदि वह आक्रमण होनेपर उसे सह लेता है तो उसकी वह अहिंसा नही है, कायरता है। कायरता से वह आक्रमण सहता है और कायरता में भय आ

हो जाता है तथा भय हिंसा का ही एक भेद है। वह परघात न करते हुये भी स्वघात करता है। अतः महावीर ने अहिंसा की वारीकी की न केवल स्वय समझा और आचरित किया, अपितु उसे उस रूप में ही आचरण करने का उन्होंने उपदेश दिया।

यदि आज का मनुष्य मनुष्य से प्रेम करना चाहता है और मानवता की रक्षा चाहता है तो उसे महावीर की इस सूक्ष्म क्षमा और अहिंसा को अपनाना ही पडेगा। वह सम्भव नही कि वाहर से हम मनुष्य प्रेम की दुहाई दें और भीतर से कटार चलाते रहें। मनुष्य प्रेम के लिये अन्तस और वाहर दोनों में एक होना चाहिये। कदाचित् हम वाहर प्रेम का प्रदर्शन न करें तो न करें, किन्तु अन्तस में तो वह अवश्य हो। तभी विश्वमानवता जी सकती है और उसके जीनेपर अन्य प्राणीयों पर भी करुणा के भाव विकसित हो सकते हैं।

क्षमा और अहिंसा ऐसे उच्च सद्भावपूर्ण आचरण हैं जिनके होते ही समाज में, देश में, विश्व में और जन-जन में प्रेम और करुणा के अंकुर उगकर फूल-फूल सकते हैं तथा सभी सुखी वन सकते हैं।

—※—



पधारो भगवान महावीर विश्व का करने को कल्याण

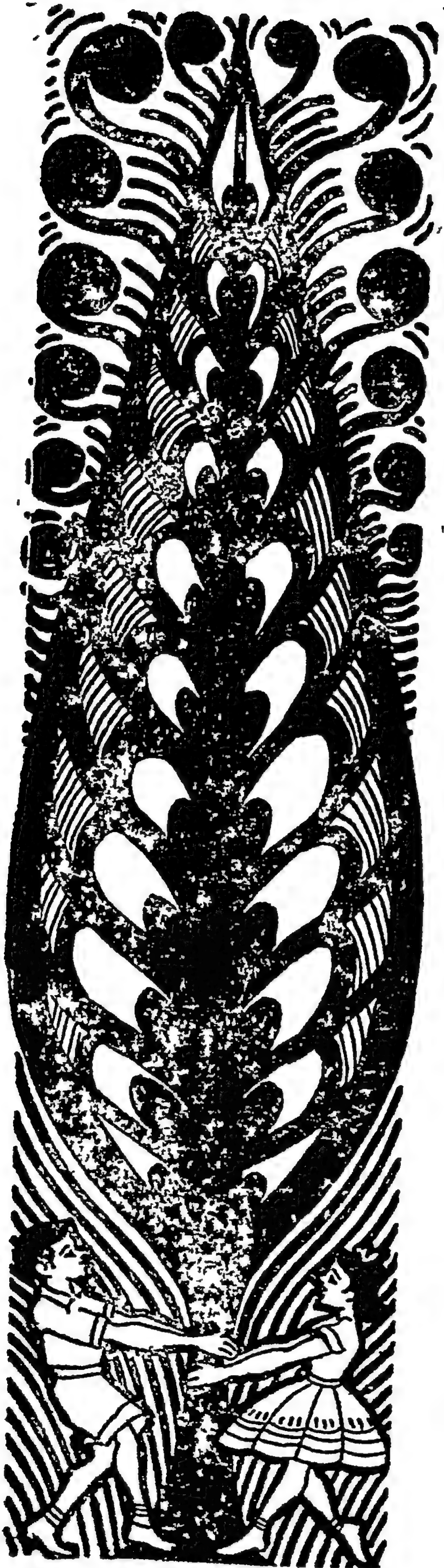
(रचयिता—अनूपचन्द जैन, न्यायतीर्थ जयपुर)

तुम्हारा अभिनन्दन हे वीर !
अहिंसा साक्षात् अवतार
तुम्हारा शत शत वंदन नाथ
सत्य की सुखद मूर्ति साकार ॥
तुम्हारा विश्व शांति के दूत नाम से होता है सम्मान ॥ पधारो ॥

जन्म ले कुण्डलपुर में देव !
बने सिद्धारथ राजकुमार
कहाये महावीर अति वीर
मिटा कर विषधर की फुंकार ॥
अल्प वय में ही सन्मति आप हो गये थे प्रकाण्ड विद्वान ॥पधारो॥

जगत परिवर्तन शील विचार !
चले वन छोड़ राजसी ठाठ
तोड़कर जन परिजन से मोह
पढ़ाने सत्य अहिंसा - पाठ ॥
दिखाने सीधा सच्चा मार्ग करे जो स्व पर का कल्याण ॥पधारो॥

स्वयं हो आत्म साधना लीन !
किया उस दिव्य ज्योति को प्राप्त
मिला सुख दर्शन ज्ञान अनन्त
हो गये आप्त पूर्ण पर्याप्त ॥
रहा कुछ नहीं जानना शेष दिया तब यह संदेश महान ॥पधारो॥



नहीं है प्राणि मात्र में भेद।
सभी है जग के जीव समान
नहीं है धनिक दीन में भेद
राव औ रंक समझ अज्ञान ॥
दलित दुखियो से करना प्यार, पाप से घृणा करो नादान ॥पधारो॥

समन्वय सीखो आग्रह छोड़।
वचन मे स्याद्वाद सिद्धान्त
कथन में अनेकान्त का योग
मिलाओ सभी द्वंद हो शान्त ॥
सभी धर्मों का ये ही सार अहिंसा मय आचार प्रधान ॥पधारो॥

बुरे है जाति पाति के रोग।
साम्प्रदायिकता की यह होड़
बुरे है रूढ़ि अन्ध विश्वास
बढ़ो अब आगे इनको छोड़ ॥
त्याग छल, छद्म और पाखण्ड, बढ़ाओ आज राष्ट्र की शान ॥प०॥

परिग्रह आवश्यक से अधिक।
कभी ना रखो अपने पास
बाट दो सबको युग के अनुसार
यही है सच्चा आत्म-विकास ॥
विपय में अनाशक्ति ही योग, धार कर कर लो अभ्युत्थान ॥पधारो॥

परस्पर वैर भाव को छोड।
विपमता की दो खायी पाट
प्रेम बंधन में बंधो 'अनूप'
दिखा दो अपना रूप विराट ॥
विश्व बन्धुत्व भावना जगे यही हो पावन लक्ष्य महान ॥पधारो॥

पधारो महावीर भगवान
विश्व का करने को कल्याण ॥

त्यागवीर भगवान महावीर

—श्री अगरचन्द नाहटा

जैन धर्म के अनुसार काल अनन्त है, उत्थान एवं पतन व रूप परिवर्तन का चक्र निरन्तर चलता रहता है, परिवर्तन को प्रधानता देते हुए काल चक्र को दो भागो में बॉट दिया गया है, उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी इनमे से प्रथम में क्रमशः विकास होता है और दूसरे में ह्रास, वर्तमान काल को अवसर्पिणी काल कहा जाता है, इसके प्रारम्भ में मानव जीवन भोग प्रधान था। यद्यपि उस समय भोगोपभोग के साधन वहुत ही सीमित थे पर उस काल के मानव त्याग व धर्म को अपना नही सके थे, इसलिए उसे भोग भूमि का काल कहा जाता है, इसके पश्चात् यद्यपि भोगोपभोग के साधन पूर्वापेक्षा वहुत अधिक अविष्कृत प्रादुर्भूत हुए पर साथ ही उनके त्याग ने वाले महापुरुष भी अनेक हुए।

प्रारम्भिक तीनो आरो में मनुष्य का जीवन एक प्राकृतिक ढाँचे में ढला हुआ-सा था। जन्म के समय में एक वालक और वालिका साथ ही उत्पन्न होते थे अतः उन्हे युगलिक कहा जाता है वे प्राकृतिक प्रकृति की छाया मे वडे होते और स्त्री-पुरुष का व्यवहार (संगम-काम भोग) करते उनके खान-पान वस्त्रादि की आवश्यकताएँ पूर्ण हो जाती, इसलिए उन्हें अन्य काम या श्रम करके उत्पादन करने की आवश्यकता नही रहती, जैन मान्यता के अनुसार आज भी इस विश्व मे कई क्षेत्र ऐसे हैं जिन्हे युगलिको की भोग भूमि की संज्ञा प्राप्त है।

त्याग मार्ग के प्रथम पुरस्कर्ता :—तीसरे आरे के अन्त में भ० ऋषभदेव उत्पन्न हुए। उन्होने युग की आवश्यकता के अनुसार विवाहादि के सम्वन्धो मे परिवर्तन किया। राजनीति, विद्या, कलाका प्रवर्तन किया। कृषि, असि, मसिका व्यवहार होने के कारण तव से यह क्षेत्र 'कर्म-भूमि' कहलाने लगा। प्राकृतिक साधनो वृक्षों के फल की कमी और आवश्यकताओ की वृद्धि द्वारा जो लोक-जीवन में असंगति एवं असुविधा उत्पन्न हो गई थी, उसका समाधान भगवान् ऋषभदेव ने किया, अतः वे सर्वप्रथम 'राजा' व लोक-नेता कहलाये। गृहस्थी भोगी जीवन के अनन्तर उन्होंने त्यागमय जीवन को अपनाया और सर्वप्रथम त्याग का आदर्श उपस्थित कर जनता को उसकी ओर आकर्षित किया। त्याग धर्म के प्रति आस्था रखने वाले श्रावक-श्राविका, साधु-साध्वी इन चतुर्विध तीर्थ-संघ के स्थापक होने से वे प्रथम तीर्थंकर कहलाये। उनकी भव्य एवम् उदात्त परम्परा में अन्य २२ तीर्थंकरो के हो जाने के वाद २४वें तीर्थंकर भ० महावीर हुए। उनके पश्चात् अन्य कोई तीर्थंकर इस अवसर्पिणीकाल में इस भरत क्षेत्र में नही होने के कारण वे चरम तीर्थङ्कर कहलाते हैं।

भगवान महावीर का मूल याने जन्म नाम वर्द्धमान था, पर उनकी अद्भुत धीरता की ख्याति इतनी अधिक वढ़ी की वर्द्धमान नाम केवल शास्त्रो में ही सीमित रह गया, प्रसिद्धि 'महावीर' नाम को ही मिली, भारतीय संस्कृति में वीर शब्द केवल रणवीर के लिये ही प्रयुक्त नहीं होता, अपितु दान एव त्यागादि धर्मों में प्रकर्षता करने वाले भी दानवीर से सम्बोधित किये जाते हैं। महावीर का तप भी महान् था, अतः उन्हें तपवीर भी कहा जा सकता है। दीक्षा के पूर्व १ वर्ष तक निरन्तर दान देते रहने से 'दानवीर' तो थे ही, पर दान एवं तप दोनों का

समावेष त्याग में ही किया जा सकता है। अतः मैने प्रस्तुत लेख के शीर्षक में उनके आगे त्यागवीर विशेषण रखा है। अब भगवान महावीर की आदर्श त्याग-वीरता पर संक्षिप्त विवरण उपस्थित किया जा रहा है।

यह शरीर भोगों के द्वारा उत्पन्न होता है और उन्ही से बढ़ता है अतः जीवन में पौद्गलिक भागों का भी महत्वपूर्ण स्थान है। एक तरह से आहार, मैथुन आदि की जीवो की प्राकृतिक आवश्यकताएँ भी कहा सकता है, क्योंकि इनके बिना जीवन चल नही सकता, टिक नही पाता पर बन्धन का कारण होने से भोग, मोक्ष मार्ग का विरोधी है। यह संसार इन भोगो की आसक्ति पर ही आश्रित या आधारित है। इसलिये महापुरुषों ने भोग-रूपी कीचड से ऊपर उठकर त्याग को प्रधानता दी। जीवन धारण के लिये खान-पान का उपयोग जितने परिमाण में अनिवार्य है, उसको अनासक्ति पूर्वक ग्रहण करते हुए भोगोपभोगो को घटाते जाना और त्याग की ओर बढ़ते जाना ही आध्यामिक जाग्रति है। विषय भोगो का आदर पौद्गलिक आसक्ति है। जहाँ तक हमारा देहाध्यास आत्मा गौण रहेगी। भोगों को बन्धन का कारण एवं त्याग को मुक्ति का मार्ग बतलाया है।

वैदिक संस्कृति मूलतः यज्ञ प्रधान थी पर श्रमण संस्कृति के प्रभाव से उसमें भी सन्यास या त्याग मार्ग को सर्वोच्च स्थान देना पडा यद्यपि उसमें ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ आश्रम के बाद त्याग को धारण किया जा सकने का विधान है। जैन संस्कृति में त्याग-निवृति प्रधान है? जो व्यक्ति सन्यास धारण नही कर सकते, वे गृहस्थ धर्म अणुव्रती का पालन करे, यह विधान होने पर भी महत्व त्याग को ही दिया गया है। अव्रती, गृहस्थ ही साधारण कोटि है। अणुव्रती ही गृहस्थ जीवन का वैशिष्ठय है। व्रत ग्रहण से ही त्याग मार्ग आरम्भ होता है, वैसे वस्तुओ की अप्राप्ति में या अनिच्छा पूर्वक भी त्याग होता है। वैसे वस्तुओ की अप्राप्ति में या अनिच्छापूर्वक भी त्याग होता है। पर वह व्रत नही है। व्रत को आशिक रूप में धारण करने वाले देश विरति श्रमणोपासक या श्रावक कहलाते हैं और व्रतो को पूर्ण रूप से धारण करने वाले 'महाव्रती' होते है। इनका आशिक त्याग ही देश विरति या अणुव्रत है।

भगवान महावीर ने गृहस्थावस्था में भी त्याग को अपना लिया था। निश्चयानुसार अपने माता-पिता के स्वर्गवास के अनन्तर उन्होने जब सन्यास ग्रहण की भावना व्यक्त की तो उनके बडे भाई नन्दी वर्धन ने उन्हें रोका। वे उनके अनुरोध से दो वर्ष और घर में रहे पर अनासक्त साधु की तरह, पिछले एक वर्ष तो उन्होने प्रतिदिन दान दिया जिससे साम्वत्सरिक दान कहा जाता है, दो वर्ष पूरे होते ही तीस वर्ष की पूर्ण यौवनावस्था मे भगवान महावीर ने अणगार धर्म का स्वीकार किया और निग्रन्थ बने। कुटुम्ब, परिवार, वस्त्रा भूषण, धन, जन, भूमि आदि समस्त बाह्य पदार्थों एवं देहासक्ति आदि अभ्यन्तर परिग्रह के त्याग को स्वीकार किया। उनके श्रमण होने का सर्वप्रथम प्रतिज्ञा वाक्य यह है "करेमि सामाइयं, सव्वं सावज्ज पच्चक्खामि" अर्थात् उन्होने सम-भाव का स्वीकार स्वयं सर्व सावध पाप कर्मों का त्याग करने की प्रतिज्ञा ली। पॉच इन्द्रियो के विषय भोग सावध-पाप कार्य होने से एवं धन, परिवार शरीर की ममता सावध पाप होने से महावीर निग्रन्थ बने। उनका परित्याग बहुत ही विलक्षण एवं उच्च कोटि का था। श्रमण होने के बाद उन्होंने कभी भी अपने परिवार की सुधि नहीं ली, राजभोगों की ओर कभी मुडकर नही, देखा अर्थात् उनकी कभी इच्छा तक नही की। जन्मभूमि एवं भाई, पुत्री आदि स्वजन परिजनों का तनिक भी मोह नही रक्खा, परिग्रह का त्याग इतना उच्चकोटि का किया कि शरीर निर्वाह के लिये आवश्यक वस्त्रादि का भी सर्वथा परित्याग करके वे पूर्ण दिगम्बर बन गये इतना ही नही, उन्होंने अन्न पान आदि आहार को त्याग कर उग्र तप को अपनाया। साधनावस्था के १२।। वर्षों मे पूरे वर्ष भर (३६० दिन भी) उन्होंने आहार ग्रहण नहीं किया, शीत-ताप आदि प्राकृतिक शारीरिक कष्टो को सहन किया साथ ही देव मनुष्य, तिर्यंच के दिये हुये कठोर एवं मरणान्तिक कष्टो को भी समभाव से सहा। यह उनके देहा-शक्ति परित्याग की सर्वोच्च स्थिति थी। इस प्रकार उन्होंने मोह ममत्व का सर्वथा त्याग कर महान-त्यागी या त्यागवीर का आदर्श उपस्थित किया। वास्तव

में गुणों का उत्कर्ष अवगुणों के त्याग के विना सम्भव नहीं। इसी लिये धर्म के दो रूप माने गये हैं—विधि और निषेध अमुक काम करना चाहिये, इस विधान के साथ उससे विरोधी अमुक काम नहीं करना चाहिये ऐसा निषेध रूप धर्म (शिक्षा) का सम्बन्ध जुडा हुआ है। अर्थात् विधि के साथ निषेध का घनिष्ठ सम्बन्ध जुडा हुआ है। जैन धर्म में तो निषेध का विधि से भी अधिक महत्व दिया गया है। जैसे हिंसा के त्याग रूप धर्म का नाम ही अहिंसा है। इसी तरह असत्य, चोरी, मैथुन, परिग्रह के त्याग की प्रतिज्ञा भी हिंसा, मृषा अदत्ता दान, मैथुन परिग्रह विरामण आदि शब्दों द्वारा की जाती है। "विरमण" अर्थात् विराम लेना—त्यागना, पाप कार्यों से विरत होना ही है।

हेय, ज्ञेय, उपादेय इस त्रिपुटि रूप विवेक ज्ञान में त्यागने के योग्य पापो के त्याग का विधान 'हेय' शब्द में सूचित है, मन की चचलता त्याग विना ध्यान नहीं होता। ध्यान की साधना करने वाले को वोलना छोड कर मौन रहना पडता है एवं पद्मासन न अन्य आसनादि द्वारा काया की अस्थिरता का त्याग जरूरी होता है। जैन धर्म में मन, वचन, काया की गुप्ति का विधान है उसका तात्पर्य यही है कि इन योगों को अपने वश में किया जाय, उन्हें बुरे कार्यों से हटाया जाय, सामयिक करना इसी विधि वाक्य के साथ ही विशेष सच्चे सर्व सावध योगों के प्रत्याख्यान की प्रतिज्ञा की जाती है। आवश्यकों में प्रत्याख्यान तो 'त्याग' का ही जैन पारिभाषिक पर्यायवाची शब्द है, वैसे कायोत्सर्ग में भी देहाध्यान के त्याग का भाव ही प्रधान है। प्रतिक्रमण का अर्थ है पाप स्थानों से पीछे मुडना उससे भी अट्ठारह पाप स्थानों के त्याग ही भाव स्पष्ट है। १० श्रमण धर्मों में क्षमा आदि धर्म है। उनमें भी क्रोध का त्याग क्षमा, माया का त्याग-आजर्व-सरलता, अभिमान का त्याग सन्तोष, परिग्रह का त्याग रूप-अकिंचन धर्म है और त्याग को स्वतन्त्र धर्म भी माना है। इस प्रकार दोषो या पापों का त्याग ही धर्म है। असत् अकुशल कर्मों को छोडना और सत्वें कुशल कर्मों का करना ही तो धर्म है। मोक्ष मार्गत्रयमें मिथ्यात्व का त्याग ही सम्यक्त्व हैं। इच्छाओं का निरोध त्याग तप है पौद्‌गलिक सग के निवारण से ही आत्म स्वरूप की उपलब्धि होती है। विभागो का त्याग ही स्वभाव रमणता है। स्वार्थ का त्याग किये विना परमार्थ नहीं सधता, कर्मों का त्याग ही तो मुक्ति है। आठ कर्मों का नाश होने पर ही तो मुक्ति है, आठ कर्मों के नाश होने पर ही आत्मिक गुणो का पूर्ण प्रगटीकरण होता है। भारतीय साधना प्रणाली में सत् प्रवृति और निवृति इन दोनो को धर्म की संज्ञा दी गई है। जैन धर्मों सत्प्रवृति से कार्य ले इन दोनो को धर्म की संज्ञा दी गई है। जैन धर्म तो निवृति प्रधान धर्म माना जाता है, अर्थात् उसमें तो त्याग ही प्रधान है।

भारतीय सस्कृति में त्याग को आदरणीय एवं महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। वडे से वडे भोगी राजा, महाराजा, चक्रवर्ती तक एक अंकिचन-सन्त महात्मा के चरणों झुकते रहे हैं। भोगियों का कोई नाम भी नहीं लेता, जवकि त्यागियों का नित्य स्मरण व जाप किया जाता है। जो व्यक्ति अपने ही स्वार्थ या भोगो में मस्त रहता है उसे कोई भी श्रद्धा से नहीं देखता। श्रद्धा भाजन वही वनता है जो दूसरे के भले के लिये अपने स्वार्थ का परित्याग करें। त्याग, दोषो का होता है, गुणो का नहीं। जितने अशो में दुर्गुण, दुर्व्यसन असत् अंग व असत् प्रसंगो का त्याग किया जाएगा, उतना ही गुणो का विकास होगा। इस प्रकार भगवान महावीर जैसे आदर्श त्यागी से हमें त्याग की महान शिक्षा ग्रहण कर अपने जीवन को धन्य वनाना चाहिये। पर ये ध्यान रहे कि हमारा त्याग दिखाऊ न हो, किसी दवाव से न हो, अतः वाहर की वस्तुओं को त्याग देने पर भी यदि अन्तर में उनकी इच्छा वनी रहती है तो वह वास्तव में त्याग नहीं, त्याग और वैराग्य का घनिष्ठ सम्वन्ध है। वैराग्य में पुनः शिथिलता आना सम्भव है। भगवान महावीर की स्मृति रूप जयन्ती मनाते हुए हम त्याग धर्म को अधिकाधिक अपनावें यही जयन्ती मनाने की सार्थकता है।

—※—

साम्यवाद, समाजवाद एवं अपरिग्रहवाद

डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल (जयपुर)

विश्व के सभी राष्ट्र आज के युग में किसी-न-किसी वाद के आधार पर अपने-अपने राज्य की नीति निर्धारण करते हैं। अमेरिका, ब्रिटेन एवं फ्रांस जेसे राष्ट्र अपने को पूँजीवाद राष्ट्र कहते हैं। रूस और चीन ने अपने को साम्यवादी राष्ट्रो की पंक्ति में खडा किया है तथा भारत जैसे देश ने अपने को समाजवादी राष्ट्र घोपित किया है। इन तीनों ही प्रणालियों में जनता की भलाई एवं लोककल्याणकारी राज्य की परिकल्पना की जाती है। लेकिन पूँजीवाद में जहाँ पूँजी की अनियन्त्रित संचय, उपभोग एव वितरण है वहाँ साम्यवाद एवं समाजवादी व्यवस्था में पूजी पर एकाधिकार की समाप्ति तथा उसके उपभोग एवं वितरण पर अंकुश है। पूँजीवाद में सम्पत्ति का खुला प्रदर्शन है। धनी, निर्धन एवं वर्गभेद की खुली छूट है वहाँ साम्यवाद एवं समाजवाद में एक वर्ग रचना की परिकल्पना है। लेकिन इन सबसे भिन्न एक और वाद है जो अपरिग्रहवाद के नाम से जाना जाता है जिसमें नैतिकता के आधार पर परिग्रह की सीमा का निर्धारण होता है जिससे दूसरों को भी अवशिष्ट सपत्ति का लाभ मिल सके।

पूँजीवाद राष्ट्र भी अपने आपको समाजवादी राष्ट्र घोषित करते हैं क्योकि पूँजीवाद का उद्देश्य भी समाज के सभी वर्गों को विकास के उचित अवसर प्रदान करना है। समाजवाद एक आधुनिक विचारधारा है जिसका उद्देश्य आर्थिक जीवन को नियमन द्वारा समाज में फैली हुई व्यक्तिगत असमानताओ को दूर करना है। समाजवाद उन प्रवृत्तियो का समर्थक है जो सार्वजनिक कल्याण पर जोर देती है तथा उसकी मान्यता है कि राष्ट्र को पुलिस राज्य न होकर लोककल्याणकारी वनाने का सकल्प होना चाहिए किन्तु साम्यवाद वर्गहीन समाज का निर्माण करने का उद्देश्य प्रस्तुत करता है जिसमें ऊँच नीच, धनी निर्धन का कोई भेद नही तथा जाति धर्म, रंग एवं रष्ट्रीयता को कोई स्थान नही। अपरिग्रहवाद की परिकल्पना में ऐसे समाज का निर्माण करना है जिसमें राष्ट्र का प्रत्येक व्यक्ति अपनी आवश्यकताओ पर नियन्त्रण करे तथा आवश्यकता से अधिक सग्रह को लोक कल्याण के लिये स्वमेव वितरण कर दे। अपरिग्रहवाद में दूसरो के प्रति सहानुभूति होती है जिससे प्रेरित होकर वह अपने राष्ट्र एवं समाज के व्यक्यिो के स्तर को उन्नत करने का प्रयास करता है।

साम्यवाद बनाम अपरिग्रहवाद

अपरिग्रहवाद के सिद्धान्त को पार्श्वनाथ एवं महावीर ने देश को उस समय दिया था जब यहाँ धनी निर्धन, ऊंच नीच, शिक्षित अशिक्षित, ब्राह्मण अब्राह्मण का वर्ग का भेद अपनी चरम सीमा पर पहुँच चुका था। जब उन्होंने देखा कि एक व्यक्ति के पास तो इतना अधिक संग्रह है कि वह उसके कारण अपने आपको संत्रस्त मानता है किन्तु एक ऐसा वर्ग भी है जिसको दो जून पेट भर खाने को भी नही मिलता। एक व्यक्ति के पास अशर्फियों का भण्डार है, हाथी घोड़ों की पंक्ति खडी है तथा नौकर चाकर की कोई सीमा नहीं है तो दूसरी ओर कुछ ऐसे भी व्यक्ति है जिनके पास ये सभी कल्पनामात्र है। महावीर से यह सब नहीं देखा गया और उन्होंने अपनी देशना में अणुव्रत एवं महाव्रतो के माध्यम से समस्त राष्ट्र में व्यक्ति के वर्ग भेद मिटाने के लिये परिग्रह, परिमाणव्रत अथवा अपरिग्रह को जीवन में उतारने की व्यवस्था की।

साम्यवाद को राष्ट्र में व्यवहृत करने के लिये क्रान्तिकारी एवं हिंसात्मक पद्धति की व्यवस्था है। इसमें गोली, रक्तपात, एवं मारकाट सभी क्षम्य है। शासन एव समाज सचालन सगीनों की नोक पर होता है। समाजवाद में अधिनियमो के आधार पर समाज में परिवर्तन किया जाता है। बैंकों का, बीमा व्यवसाय का, एवं

वसो का राष्ट्रीयकरण इसी का एक अंग है। गेहूँ एवं चावल के व्यापार एव वितरण का राष्ट्रीयकरण भी समाजवाद की दिशा में पहले सीठी वतायी जाती है। स्वयं इन्दिरा गाँधी ने इन सवको समाजवाद की दिशा में अग्रसर होना वतलाया है। लेकिन अपरिग्रहवाद में अहिंसा की प्रधानता है। वहाँ न संगीनो का भय है और न अधिनियमो की व्यवस्था है किन्तु व्यक्ति स्वयंमेव अपनी आवश्यकताओ को कम से कम करता है। इस व्यवस्था में हृदय का परिवर्तन है तथा अहिंसा प्रेम एवं सहानुभूति की प्रधानता है। साम्यवाद परस्पर में घृणा, इर्ष्या एवं मनमुटाव को जन्म देता है। समाजवाद में अधिनियमो के अधार पर दूसरों की सम्पत्ति पर अधिकार कर लिया जाता है जव कि अपरिग्रहवाद मे मनुष्य स्वयंमेव त्याग की ओर प्रवृत होता है तथा समाज में एक दूसरे के प्रति प्रेम एवं सद्भाव को प्रोत्साहन मिलता है।

साम्यवाद विचारधारा में व्यक्ति में सार्वजनिक कल्याण की कोई भावना नही रहती। यद्यपि वहां सभी को विकास के समुचित अवसर प्रदान किये जाते हैं फिर भी मनुष्य अपनी बुद्धि, प्रतिभा एवं साधनों के आधारपर अपना विकास करता है। इसी तरह समाजवादी व्यवस्था मे भी स्वपर कल्याण की भावना कम होती जाती है। वसो का राष्ट्रीयकरण के पहले निज वसों के मालिकों द्वारा स्थान-स्थान पर जलग्रह की व्यवस्था की जाती थी, वृद्धो अपाहिजो एवं असहायों के लिये कल्याणकारी कोष स्थापित थे लेकिन अव उसका कोई प्रश्न नही है क्योकि सभी राष्ट्रीय संपत्ति वन चुकी है। अपरिग्रहवाद में दया एवं दान का विधान है। त्याग का सर्वोपरी स्थान है तथा मनुष्य में दूसरों के प्रति कल्याण करने की भावना की प्रमुखता है। औषध-दान, ज्ञानदान, अहारदान एवं अभय-दान, सभी का इसमें विद्यमान है। समाजवादी व्यवस्था में यद्यपि हिंसा को कोई स्थान नही है लेकिन कानून के आधार पर दूसरो की सम्पत्ति पर जवरन कब्जा करने का विधान है। देश में जो आज राष्ट्रीयकरण का जोर है वह सव इन्ही विचारों के कारण है। इस व्यवस्था मे मनुष्य अपने विकास को अन्तिम सीमा तक नही जा सकता। व्यापारी अपने व्यापार को विस्तार करने से डरता है। उद्योगपति वडे-वडे उद्योग लगाने में हिचकता है और किसान को उन्मत्त रूप से खेती करने का अवसर नही मिलता। सवको सिमित कर दिया गया है। सीमाएं वाँध दी गयी है और सीमा से अधिक होने पर उसे राष्ट्र की सम्पत्ति घोषित कर दिया जाता है। लेकिन अपरिग्रहवाद में सीमा का वन्धन होने हुए भी उसमें व्यक्ति को अपने विकास का पूर्ण अवसर मिलता है। इसके अतिरिक्त अपरिग्रहवाद में केवल वाध्य मे परिग्रह पर ही अंकुश लगाने की व्यवस्था ही नही है किन्तु मनुष्य को अपनी आन्तरिक बुराइयों एवं कमियों से वचने का भी प्रावधान है। वह केवल खेत, मकान, धन, धान्य, वस्त्र, पशुधन, सवारी, सय्या, एव आसन आदि की आवश्यकताओ पर ही अंकुश लगाने को नही कहता किन्तु, क्रोध, मान, माया, लोभ तथा रति, अरति, शोक, भय और घृणा जैसी बुराइयों पर भी अंकुश रखने की व्यवस्था करता है। वास्तव में महावीर ने मानव की स्वभाविक कमजोरी पर ध्यान दिया और उसको दूर करने का उपदेश किया। आज देश में जो संस्कृति के स्थान है, पूजा एवं उपासना के स्थान है वे भी हमारी इसी अपरिग्रहवादी विचार धारा के प्रतीक है। साम्यवाद एवं समाजवाद में ऐसी प्रवृतियो के लिए कोई स्थान नही।

इस प्रकार अपरिग्रह वर्तमान युग के लिये सवसे अच्छी रामवाण दवा है जो एक और मनुष्य के अपने विकास की पूर्ण स्वतन्त्रता देता है वहाँ दूसरी ओर वह अतिसंग्रह पर अंकुश लगाने की भी प्रेरणा देता है। यह एक ऐसी अहिंसक पद्धति है जिसमें कल्याणकारी समाज की व्यवस्था हे। ऊँच-नीच, धनो निर्धन के भेद भाव को भुलाकर मानव मात्र में प्रेम, सद्भावना एवं कल्याणकारी भावना को प्रोत्साहित करता है। यही नही वह मनुष्य की आन्तरिक बुराइयों के सग्रह पर भी रोक लगाता है और इन बुराइयों को जीवन से निकाल कर शुद्ध एवं पावन जीवन निर्माण की ओर प्रेरणा देता है क्योकि जव तक मानव जीवन में इन बुराइयों पर नियन्त्रण नही होगा तव तक जीवन में सुख एवं शान्ति के साथ ही कल्याणकारी भावना की उत्पत्ति भी नही हो सकेगी।

हिंसा-रत विश्व के लिये भगवान महावीर का अमर सन्देश

राजवैद्य जसवन्त राय जैन, कलकत्ता

समयं गोमय ! मा पमायए

—हे गौतम ! तू क्षण मात्र भी प्रमाद न कर ।

भगवान् महावीर की यह अमर वाणी समस्त मानव-जाति के लिये है । आज जब कि हम प्रमत्त है, उन्मत है, युद्ध-रत है हिंसा व घृणा से भरे है—उस समय भगवान वर्धमान प्रभू सम्पूर्ण मानव जाति के मानो जागरण का अमर स्वर प्रदान करते हुये कह रहे हैं—

जागो, उठो, क्षण मात्र भी प्रमाद न करो ।

भगवान् महावीर तप, संयम, त्याग व वैराग्य के मूर्तिमान अवतार थे । उन्होने विपुल वैभव, ऐश्वर्य एवं भोग को ठुकराकर संयम का मार्ग लिया था ।

भगवान् महावीर का अवतरन् २५७१ वर्ष पहले वर्तमान विहार प्रांत के क्षत्रिय कुण्ड ग्राम महाराज सिद्धार्थ की महरानी त्रिशला की पवित्र कुक्ष से चैत्र शुक्ला त्रियोदशी को हुआ था । तीस वर्ष की अवस्था में आपने साधु धर्म ग्रहण किया और कठोर तपश्चर्या के परिणाम स्वरूप आपने कैवल्य ज्ञान प्राप्त किया । भव वन्धन के खुल जाने से महावीर निगण्ठ या निग्रन्थ की उपाधि से विभूषित हुये । राग द्वेष रूपी शत्रुओ पर विजय पाने के कारण आप ही जिन (जैना) हैं आप ही तीर्थंकर अर्हत् एवं महावीर हैं ।

भगवान् महावीर ने मनुष्य जाति को आशा, उत्साह व पौरूष से उद्दीप्त किया । आपने सन्देश दिया कि सभी को मुक्त होने का अधिकार है और सभी अपने पुरूषार्थ से कैवल्य प्राप्त कर सकते हैं'। भगवान् महावीर की सन्देश किसी एक देश के लिये नही, एक जाति के लिये नही, एक वर्ग के लिये नही. एक काल विशेष के लिये नही—यह सन्देश सनातन है, सार्वभौम है, सार्वकालिक है ।

"अहिसा" का महान सन्देश ही आज मनुष्य जाति को महाविनाश, महाध्वंस एवं सर्वनाश से वचा सकता है । महावीर का जीवन अहिंसा की विराट प्रयोगशाला थी—आपने अहिंसा का परम साक्षात्कार कर अपने को अभय बनाया था । अहिसा का आमोघ अस्त्र ही मानव जाति को पाशविक प्रवृतियो से वचा सकता है । संयमहीन जीवन की ओर वढ़ते हुये दुनियाँ के लिये सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान एवं सम्यक् चरित्र ही एक ऐसा मार्ग है—जहाँ उसकी रक्षा, प्रगति एवं विकास सम्भव हे ।

उनका भौतिक उपदेश यही था कि स्वयं सत्य रूप वनो और सत्य का साक्षात्कार करो । असत्य से घिरे रहकर सत्य की प्राप्ति असंभव है । दुःख का मूल कामना है—दुःख के महासागर से सन्तरण करने का एक मात्र उपाय है—कामना पर अंकुश लगाना परिग्रह घटाने मे ही सच्चा सुख व सन्तोप है ।

आज मनुष्य जाति अनेक राष्ट्रों, दलों, विभिन्न राजनीतिक शिविरो व संग्राम-संघों में बटी हुई है—रात-दिन परस्पर घृणा वैमनस्य व विरोधों का तूफान उठ रहा है—कोई किसी के दृष्टिकोण को समझाने के लिये तैयार नहीं—उस समय केवल अनेकान्तवाद ही एक ऐसा उपाय है जो विश्व मैत्री, मानव एकता एवं परस्पर सहानुभूति को जगा सकता है—दुराग्रहो से मनुष्य जाति को मुक्त कर सकता है।

भगवान् महावीर भास्कर हैं—जिनके प्रकाश के सभी अधिकारी हैं। भगवान् महावीर अमृत वर्षा मेघ है—जिनकी शीतल ताप हरनेवाली वर्षा पर सभी पीडितों का अधिकार है। महावीर की वाणी शान्त, गभीर एवं वैराग्य की आभा से आलोकित है। व्यक्ति, समाज, राष्ट्र सभी स्तर पर महावीर की वाणी सारी समस्याओं का समाधान है।

हमारे सामने २५००वाँ निर्वाण शताब्दी का स्वर्णावसर है, इस अवसर पर हम अपना आत्म निरिक्षण करें, अपने को उन्नत बनावें, तभी महावीर की पूजा सार्थक है। विश्व मंगल, विश्व शान्ति के लिये महावीर वाणी का अमर सन्देश पहुँचाने का दायित्व हमारे पर है, यदि हम आज की हिंसा व घृणा से भारी दुनियाँ में महा प्रभु महावीर का शुद्ध, शान्त, निर्विकार विश्व मैत्री, संयम, अपरिग्रह का सन्देश किञ्चित्मात्र भी पहुँचा सकें तो यह शताब्दी वर्ष सार्थक होगा।

—※—

लौकिक जीवन में धर्म की प्रतिक्रिया

लेखक—प्रकाश हितैषी शास्त्री दिल्ली

यदि प्राणी धर्म पथ पर चलने लग जाय तो उसका जीवन अपूर्व सुख शांति मय वन जायगा। क्योकि धर्म के सिद्धान्त लौकिक और पारलौकिक जीवन को सुखी वनाने के लिये हैं किन्तु अज्ञानी मानवो ने यह मान रहा है कि यदि धर्म सिद्धान्त पर जीव चलने लगे तो भूखो मर जायगा। वल्कि देखा यह जाता है जो अधर्म का मार्ग अपनाते हैं वे निरन्तर चिन्तातुर रहकर दुखी वने रहते हैं।

जैनधर्म में अध्यात्म की प्रधानता है। यदि इस अध्यात्मवाद को प्राणी समझ ले तो कभी भी किसी से वैर भाव नही कर सकता है। क्योकि अध्यात्मवाद वतलाता है कि सभी द्रव्य स्वतन्त्र हैं कोई भी द्रव्य किसी अन्य द्रव्य का साधक वाधक नही हैं। सभी प्राणी अपनी करनी का फल भोगते है। कोई भी किसी को सुखी-दुखी नही कर सकता है। यदि इस सिद्धान्त को स्वीकार कर ले तो जीव किसी दूसरे से राग द्वेष क्यो करेगा? क्योकि जो भी अनुकूल के प्रतिकूल संयोग हो रहे हैं वे सव अपनी ही करनी का फल है, उसमें जो सामने वाला निमित्त दिख रहा है वह तो मात्र वाह्य निमित्त है। जब हमारे पुण्य पाप का उदय आता है, तव वह निमित्त वन जाता है। यदि कोई भी पदार्थ प्रतिकूल हो गया है तो वह पाप के निमित्त से हुआ है और अनुकूल हुआ है तो पुण्य फल के निमित्त से हुआ है। इसलिये आचार्य कहते हैं कि यदि अपकार करने वाले पर यदि क्रोध करते हो तो सवसे वडा अपराध करने वाला तुम्हारा विकारी भाव है। उस पर क्रोध करो, मारते हो तो उस विकारी भाव को मारो।

धर्म का दूसरा सिद्धान्त अहिंसा है—उसमें निश्चय अहिंसा का सम्वन्ध अध्यात्म से है। अर्थात् राग द्वेष का न होना अहिंसा है। और राग द्वेष का होना हिंसा है। जव जीव अपने शुद्ध स्वभाव की पहचान कर उस ओर झुकता है, उसमें रुकता है तव राग द्वेष अपने आप नष्ट होने लगते हैं। इसी को राग द्वेष का अभाव कहा जाता है।

एक संस्कृत कवि ने कहा है—जो आत्मा में परमात्मा को देखता है तथा परमात्मा में आत्मा को देखता है, वही सच्चा अहिंसक है। क्योकि जो प्रत्येक आत्मा मे कारण परमात्मा के दर्शन करेगा वह किसी जीव को कैसे सता सकता है? धर्म सिद्धान्त के अनुसार एक छोटे-सा छोटा जीव भी परमात्मा होने की शक्ति रखता है। इसलिये एक परमात्मा को पूज्य मानकर उसकी पूजा करे और दूसरे भावी परमात्मा का तिरस्कार करे तो यह परमात्मा की पूजा कहाॅ हुई यह तो परमात्मा का मखौल हुआ।

इसीलिये आचार्यश्री समन्त भद्र ने जीवों को सर्वोदय का उपदेश दिया है। उन्होने कहा है—भगवन आपका धर्म सर्वोदय है, जिसमें सवको समान विकास का अवसर प्राप्त है। सभी प्राणी अपना-अपना विकास करके आत्मा से परमात्मा वन सकते हैं। सर्वोदयवादी में स्वभावतः सर्व धर्म सम-भाव, सर्व जाति सम भाव और सर्व जीव सम भाव होता है। वह कभी किसी का विरोध नही करता है। वह सोचता है—

जग की तन्त्री वजने दे तू कभी न उसको छेड।
तुझे पराई क्या पडी अपनी आप निवेड॥

एक अहिंसक प्राणी परम सहिष्णु होता है। जहाँ देश धर्म की रक्षा करने को युद्ध भी कर सकता है। देश धर्म के ऊपर मर मिट सकता है किन्तु वह घृणा किसी से नही करता है। युद्ध तो अन्याय मिटाने के लिये है। जैसे रामचन्द्रजी ने अन्याय को मिटाने के लिये रावण पर विजय प्राप्त की किन्तु लंका का राज्य जीत कर भी उसके भाई विभीषण को सौंप दिया। अहिंसक में इसीलिये सत्वेषु में भी जीव मात्र मे मित्रता की भावना होती है। वह पाप से घृणा अवश्य करता है किन्तु पापी से भी घृणा नही करता है। क्योकि पापी जीव तो पहले ही भूला हुआ है अतः वह तो दया का ही पात्र है।

अहिंसक जीव के सत्य अचौर्या ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह व्रत नियम से होते ही हैं। अन्यथा अहिसा व्रत पल ही नही सकता। ओर यह नियम है कि जिस के अहिंसादि व्रत होंगे उस पर सरकार की कानून की कोई भी धारा नही लगती है। अतः वह अपना जीवन सानन्द व्यतीत करता है।

अहिंसक प्राणी अपने जीवन में सह अस्तित्व और अनाक्रमण का सिद्धान्त अपनाता है। सबके साथ मिल कर रहता है किन्तु किसी भी परद्रव्य पर आक्रमण नही करता। सबको अपने २ अस्तित्व में रहने का अवसर देता है। उसमें सहज स्वभाव जीव मात्र में मैत्री, गुणियों पर प्रमोद भाव, दुखी जीवो पर करुणा भाव और धर्म से या अपने से विरोधी जीवों पर माध्यस्थ भाव होता है।

अहिंसक सबकी बात सुनता है किन्तु अपनी अनेकांत बुद्धि से उसका सही अर्थ लगा कर अपना प्रयोजन साधता रहता है। व्यर्थ के वादविवाद में अपने मूल्यवान जीवन को नष्ट नही करता है।

कोई धर्म का मार्ग प्रेम से पूछता है तो उसे अपनी सुधा वाणी से उसके हृदय को सन्तुष्ट करता है। यदि कोई उसकी बात नही मानता है तो मध्यस्थ रहता है। वह किसी के भी बिगाड सुधार का ठेकेदार नही है। अन्य जीव धर्म मार्ग पर लग कर सुखी बने, मात्र यह भावना ही कर सकता है। बिगाड सुधार या सुख दुख तो जीव अपने परिणामों पर निर्भर है।

देखा जाता है कि किसी का बिगाड करते हुए उसका भला हो जाता है और बुरा करते हुए भी उसका भला हो जाता है। जैन इतिहास में ऐसे अनेक उदाहरण भरे पडे हैं। ज्ञानी धर्मात्मा जीव लौकिक जीवन में भी परम शान्त गम्भीर और सम दृष्टि होता ही है किन्तु इसके फलस्वरूप भाविरुप भी उसका उज्ज्वल होता है। उसकी हमेशा स्वाधीनता दृष्टि रहती है। वह परम स्वावलम्बी होता है। कभी भी वह परमुखा-पेक्षी नही बनता है। वह मानता है कि जब हम अपने पुरुषार्थ से मुक्ति भी प्राप्त कर सकते हैं, तो जगत के दूसरे कार्यों में भी क्यो पराधीन वृत्ति अपनायें। अतः एक ओर जहाँ उसे समृद्धि पर रंच मात्र भी अभिमान नही होता है, वहाँ वह कभी भी अपने आत्म-गौरव को विस्मृत नही करता है। दीनता और हीनता उससे कोसो दूर भाग जाती है। वह सम्पत्ति में इतराता नही और विपत्ति में कभी घबराता नही। ये दोनो अवस्था उसकी अपनी वस्तु नहीं है। मात्र उसके ज्ञान के क्षेत्र हैं। अतः वह लौकिक जीवन में भी अपूर्व सुख शान्ति से रहता है।



"TRI-RATNA"

Dr ROMA CHAUDHURI, *Vice-Chancellor*,

Rabindra Bharati University, Calcutta.

What is end of Life ? This, after all, is the most primary, most urgent, most fundamental question of our lives , and, as natural, various answers have been given by different thinkers, different philosophers, different theologicians, all over the world, all throughout the ages But Indian thinkers, Indian philosophers, Indian theologicians have always a ready answer, an incontrovertible answer to it—viz , Moksa or Salvation "Dharma-Artha-Kama-Moksa"—these are ordinarily taken to be the "Caturvarga" or "Four-fold Aims" of human life, viz "Religion , Wealth · Worldly Gain : Salvation". But staunchly rejecting all—even Religion, generally supposed to be the main cause of bringing down the Kingdom of God on earth—Indian Satya-drasta-Risis or Truth-seeing Truth-manifesting saints and sages and seers of India, have fixed on one thing only as the summum-bonum, as the supreme, or, rather the only end of life— viz, as pointed out above— Moksa or Salvation.

And, simultaneously, we come to be confronted with a two-fold equally fundamental question : viz, what exactly is this state of Moksa, Siddhi or Salvation, the Supreme Goal ? Again, what is the means or Sadhanas to this Supreme Goal ?

Here, Sri Mahavira of immortal fame, one of the greatest saviours of Mankind, the world has ever produced, has given us totally new conceptions regarding both the end and the means, Moksa or Siddhi and its Sadhanas or ways or paths to the same. This is his world-famous ' *Doctrine of Tri-Ratna*" or the Doctrine of Three-fold Gems. "Tri-Ratna", "Three-fold Gems" : —what an exhilarating, exalting, exquisite Name ! When we are born here on earth, where "Sarvam Duhkham Duhkham", "Sarvam Ksanikam Ksanikam", "Sarvam Sunayam Sunayam"—everything is full of sins and sorrows, everything is transitory. non-permanent in nature, everything is void, with no real worth or basis—we are, naturally, destitute, desolate, degraded, the poorest of the poor, the weakest of the weak, the sorriest of the sorry. But then, Lord Mahavira our great Saviour and Path-Director, appears before us with three great and grand and glorious boons for us all, in the form of three priceless "Gems", which in a moment, make us the richest of the rich, the strongest of the strong, the happiest of the happy— beggars, as we were, faltering and lagging behind, crouching and weeping in a corner, with none to help and encourage us at all—we are, in a minute, transformed into all-conquering heroes, sovereign kings, proceeding towards our great goal of life in firm, unfaltering, bold steps, with a smile on our lips and a song in our hearts, with sweetest hope and deepest joy, with coolest courage and clearest conviction, with firmest determination and surest ability. And, who works out this great change in us ? Our most reverential, most loved, most gracious, most merciful Lord Mahavira, by his

supreme and sublime Jaina Doctrine, a Doctrine for conquerors, conquerors of *Ajnana* or Ignorance, conquerors of *Jadatva* or materiality, conquerors of *Duhkha* or sorrows.

Now what are these three wonderful "Gems" ? These are Gems of "Samyak-Darsana[2]' or Right-Faith , "Samyak-Jnana" or Right Knowledge , "Samyak-Caritra" or Right Conduct.

"*Samyak-darsana*" or Right Faith is the first beginning of knowledge ; for without such a kind of initial faith reverence (Sraddha), none can make any real progress in the difficult path of knowledge The first thing that we have to get rid of here, is an attitude of utter scepticism or disbelief towards any and everything great or good or noble This kind of bombastic pride helps none , on the contrary, isolates and alienates the over-confident, over-self-relying, over-satisfied person from the rest, leaving him to his fate, with none to help and lead him at all. As we are human beings, mortal beings, feeble beings, fallible beings, it is but normal and natural that we should need guides and helpers, in the beginning to lead us aright in the thorny, pebbly, crooked, cruel Path of Life. And Right Faith stands for this and this much alone. As a matter of fact, it is not a kind of blind belief or dogmatic clinging to some unproved and unreasonable and unjustifiable belief. But it is only faith in a Truth with which the seeker after Truth has some preliminary kind of acquaintance and thinks it to be one having at least some chance of being finally true. Otherwise, he has no impetus for any study at all. Thus, starting with a partial faith, the beginner studies further, and if he finds that the Jaina teachings are reasonable, his faith becomes stronger and stronger. As a matter of fact, the more he studies Jaina principles, the more does his faith increase.

Then, secondly, he attains "Right Knowledge", or knowledge of the fundamentals of Jainism—viz, that of the nature of Dravyas or Substances of various kinds, of the Self and the Non-Self etc ; the salvation of the self, the means thereto and the like.

Thirdly, he should have "Samyak Caritra" or "Right Conduct". For, it goes without saying that mere theoretical knowledge is useless—theory must end in practice, knowledge in action. Or, our whole lives must be reformed and revolutionised in the golden light of the knowledge we have gained—our every thought, every feeling, every desire must be uplifted, upgraded, purified and perfected in this way—to make us "Jinas" or "Conquerors" in the most real, most correct, most lasting sense of the term.

This kind of "Right Conduct' consists of "Panca-Mahavratas" or "Five-fold Great Vows", viz, Ahimsa-Satyam-Asteyam-Brahmacaryam-Aparigraha" : Non-violence—Truth—Non-stealing—Self-control—Non-attachment.

"*Ahimsa*" or Non-violence means respect for Life, in any form whatsoever, or not injuring or hunting anyone at all. According to the Jaina view, the entire world is a living one, some kind of life or consciousness being present in any and everything on earth. So, the great maxim of the Jainas is "Ahimsa Paramo Dharma", "Non-violence is Supreme Virtue' —and this vow must be practised for all—human beings, lower animals, beasts and birds and worms and gnats, even material objects.

"*Satyam*"—or Truth-speaking means speaking the Trutn under all circumstances, whatsoever, even at the cost of one's life. At the same it means refraining from all kinds

of hard, cruel, frivolous, malicious, garrulous, vilifying talk—for—these, too, may hurt our fellow-beings not a little , as a matter of fact, much more than mere physical violence

"Asteyam"—or Non-stealing means respect for the properties of others ; and it is a corollary of the first and fundamental maxim of "Ahimsa" For if you respect life, you have to respect property also on which earthly life invariably depends

"Brahmacaryam" or Self-control is an essential pre-requisite of any kind of higher, spiritual life For, as well-known, we have dual personalities, so to speak—with a higher spiritual side and a lower physical life, and here, the higher must control the lower, the spiritual the physical Otherwise, no stepping into the Path to Progress, Path to Fulfilment, Path to Salvation will be possible at all Hence, we have to refrain from all sorts of Self-indulgence, external or internal, subtle or gross, mundane or extra-mundane, direct or indirect.

Lastly, "*Aparigraha*" or Non-attachment This is a wider form of the above , and is as such, also an essential condition of any kind of spiritual striving worth the name

The above may seem to be well-known, common forms of moral discipline , yet, as we all know, these are very difficult ones , and if practised properly, may easily bring about Salvation for all. After all, for ordinary persons, like us, such so-called small things count much—for, what more is there in common lives like ours ? As we are ordinary persons, our salvation, too, should be attainable through ordinary means , and it goes to the great credit of the great Teacher Mahavira and others that they, in their infinite glory and grandeur, did not—never for a single moment—ignore or look down upon us common people ; on the contrary, came to our levels lovingly and kindly, stretching out their gracious hands for our help, for lifting us up But they did not, in their infinite wisdom, impose impossible conditions on us, or, compel us to follow Paths, altogether beyond our comprehension and ability Rather, they set up before us something suited to us , and most encouragingly assured us that this Path of ordinary ethical disciplines, too, can take us to the coveted goal of Salvation. To, Jainism is a Universal Philosophy—not a Philosophy of mere high speculations, profound thinking, hair-splitting argumentations,—but a Philosophy of correct behaviour, pure action, proper endeavours This is within the reach of all—high knowledge is not, but right action is It is also a Universal Religion—not a Religion of God, not a Religion of Ritualism, not a Religion of mere empty forms and codes and conventions—but a living, loving Religion of Humanism, involving Love of Man, Service of Man, Sacrifice for Man.

Our gratefulness to Lord Madavira knows no bounds for this, simply for this His was a System for the masses, for the man in the street, for the common people, for ordinary individuals , and so it is a very modern system, aiming at awakening for masses, equal rights and privileges for all, and finally, at "One World"—where there will no distinctions whatsoever between man and man on grounds of castes and creeds and status and position at all, but all will be taken to be absolutely equal, with equal rights, equal opportunities, equal dignity, equal honour, equal status

Our salutation to Lord Mahavira, who so many years ago, envisaged and actualised such a lofty World-Ideal with so such ease and perfection, heralding a new golden dawn of Visva-Priti—Visva-Maitri— Visva-Santi—Visva-Seva—Visva-Tyaga Universal-Love— Universal-Fraternity— Universal-Peace— Universal-Service— Universal-Sacrifice. May we all follow his noble foot-steps , and fructify his eternal message for the benefit and uplift of all,

GLIMPSES OF JAINOLOGY

(Dr RAM CHANDRA ADHIKARI)

1. The term "Jainology" is not very familiar to most people It includes within its purview Jaina religion and philosophy , art and architecture specific in character , buicography by Jaina samants , contribution to various sciences like medicine, botany, zoology etc, some of them have been handed down from hoary antiquity, while many are compiled after the date of the last pathfinder Bhagwan Mahavira Swami (an older contemporary of gautama Buddha) Certainly he is more known than the pathfinder in the world who preceded him but he is not the founder of the extensive philosophy and religion of the Jainas. Foreign scholars, curiously enough, have written-Jainism is a branch of Buddhism The earliest Tirthankara is mentioned in the Rigveda, regarded as the most ancient treatise in India.

2. The twenty two Tirthankaras are not regarded as historical personalities History is not constant always and so-called historical facts are not necessary mathematical truths. Jainism has a very long history, the predecessors of Bhagwan Mahavira Swami transmitted down the tenets successively through centuries, possibly millenia Sri Aurobindo once wrote "that Jesuschrist existed is not proved beyond doubt". The older pathfinders are 'bridge personalities" Linking the past with present.

3. History of a religion or philosophy is not so important as their influence on the thoughts of people that the religion of the Shramanas (as distinguished from Vedicexponents) spread for and wide in the south and West even in Sri Lanka is solid truth of observation.

4 Bhagwan Mahavira demonstrated the way of life to be followed by his example as well as precepts Man is the highest of creation and the level of humanity is reached in the process of evolution Possessed of an eternal unperishable soul. man is capable of reaching the state of bliss and be atitude here or hereafter by personal individual endeavour, independent of any supermundane agency or heavenly grace Men differ from one another because their souls are polluted with dirt of their own karma-action in life, good or bad according to ethical standard. Life span, birth in a particular environ misery or happiness-all are the resultant of his personal karma. Naturally, many births have to be recognised to reach the goal of bliss, not to come down to the world full of misery and evil.

5. Thus Jainism is not a sectarian religion nor limited to any particular region or race There is evidence of the fact that Bengal was influenced by Lord Mahavira. The city of Bardhaman (anglicised into Burdwan) was a place where he preached Archaeological finds have shown relics of Jainism in the Eastern parts of Bengal.

6 The master taught us, there are souls everywhere but polluted by karma which needs be purged souls are discrete but similar in all characteristics, capable of rising eminence or degradation So the soul of another creature are not be hated or ignored Toleration is the watchword of the teaching. Tolerance of others viewpoints, sins and crimes naturally endangers humility and charity We do not like to be hated, molested so we should not think of others to be low or inferior

7 This is the real significance of Ahimsa in mind speech and body If one follows that all throughout his life, he banishes ego-hood and his example will inspire all members of the society, community or a nation.

8. Right vision, right knowledge and right conduct are difficult to obtain quickly. All our views are tainted with subjective personal peculiarities To reach perfection is the Sumum Bonum in earthly life, when there is no bar in knowing everything and all Otherwise, egoism will lead us astray, cloud our vision, Hatred and enmity will prevail in society

9 There have been attempts to stabilise equality amongst men in different times and fratenrity has been an oft quoted term But an unperfect creature can not rectify the ills of society.

10 This is the lesson we have learnt from the master, mere precepts will not go far "Iness" & "Myness" have got to be obliterated to make the earth clean, pure and perfect We make mistakes very often, do wrong to others as well as to ourselves but unless we are humble to confess those and at one for them, the state of affairs will be worse and worse For the fleting pleasures of the earth people have created disasters History is-replete with instances of personal aggrandisement of megalomaniacs But all worldly possessions are short lives, socalled fame and glory sink into oblivion

11 Living examples of the world teachers show the path, We bow down to them

12. They are the heroes in the strict sense of the term Not a conqueror who rules by blood and sweat but all his senses are under his control Lust and anger, malice and arrogance can not allure him. We offer our submission to them

The Spiritual and Ethical Values of Jainism.

Dr. PUSHPA BOTHRA

Jainism as a religious process, has two aspects, the inner and outer. From one point of view, it is a state of belief and feeling, an inward spiritual disposition, and from the other point of view, it gives ground to the ethical values It is not very different from the other developed religious in its aim Spiritual realisation is the aim of Jainism, as well as it accepts the moral ends for the developing spiritual life. Bodily and mental discipline and meditation are necessary for the purification of the self Without perfection of the self, the spiritual realisation is not possible, according to Jainism. Therefore the Tirthankaras have shown the way of life which leads to perfection of the self.

Every self (Jiva), according to the Jainas, is perfection its own nature, but due to ignorance and worldly affairs it becomes imperfect It possesses different kinds of passions and it has to take birth in the world. But gradually, when it gives up all passions or it conquires all the passions, it gains the highest perfection and becomes supreme self *(Jina or arihanta)*. And it reaches above the stage of bondage The passions are called as enemy of the self, one who kills them is called *arihanta* or one who conquires them is called *Jina*.

But it is very difficult to give up all passions at once. It requires a long practice of mental and bodily discipline and meditation. The Jaina Tirthankaras have shown the way, it is called the path of three jewels.

The three jewels are *samyaka darsana*, *samyaka Jnana*, and *Samyaka CHARITRA* (right faite, right knowledge and right conduct) In other words, the three jewels are the three aspects of the path to perfection. These three cannot exist exclusively of each other, but they are the supplementary to one another. In this article I will try to explain the nature and value of *Triratna* of the Jainas, which become helpful to lead a moral life as well as to reach the spiritual.

(1) *Samyaka Darsana*—Generally, it is called as a faith in the principles of Jainism. But from the real point of view or from *niscayadrsti*, *samyaka darsana* means a sense or a feeling of the realisation of self. Thus "*samyaks darsana*" means true vision of self. One has the experience of the self itself other than the body. We may compare it with '*Viveka Jnana*' of the Samkhya yoga and the Advaita systems of philosophy. Therefore *samyaka darsana* is the first necessary condition in the way to perfection One should know at first, what is self, and what is the relation between self and body. But the realisation of

vow of non violence. This practice of Samiti or carefulness in his activities will make him a good civilised citizen

The five vows are the basis for the spiritual and ethical practice in Jainism We will try to explain them one by one in the Jaina sense.

(A) *Ahimsa or the Vow of non-violence*—The Jaina attitude of *ahimsa* is based on the feeling of kindness and sympathy All living beings are equal as they all possess consciousness of pleasure and pain. Therefore one should be kind to every living being. Ahimsa is not only limited to not killing of any living being but also none should be forced to do anything against his wish One should not commit violence even in thought. Thoughts and ideas must be pure. If one thinks to kill or to give troubles to others, he commits violence in thought it is called *bhavahimsa* Violence in action as well as in thought should be omitted according to Jainism

On the other hand, the Jainas are not narrow minded They have realised that in some cases or in some cases or in some special circumstances one has to comit violence, as for example, in the time of war or inself-defence or for the defence of country, society or religion etc But in all such cases the aim should be 'to save' something, or the aim should be pure The Jainas therefore has divided *himsa* or violence in four types.

(a) *Udyamihimsa or violence in profession*—One should not do any profession which depends on violence or one have to kill some living beings, just as the profession of butcher fisherman, eggman, profession of leather and hear etc *Udyamihimsa should be ommitted in any case.*

(b) *Samkalpihimsa or intentional violence—One should not commit violence intentionally.* Samkalpihimsa includes violence for the sake of fun or violence performed under intense passion.

(c) *Aramhhihimsa or unintentional violence*—Inspite of carefulness, we commit violence some times; unintentionally, as in walking, cooking etc A householder cannot save himself for committing this types of violence but oneshould be careful to do his daily routine

(d) *Virodhihimsa or violence in defensive works*—Violence in defensive works is called *virodhihimsa* Although *Virodhihimsa* is a type of violence, but in some special conditions a householder has to commit it, as for example, in self defence or for the defence of people, country or religion etc But the aim should be 'to save' something, not agreessive. A householder can take part in war in order to save his country.

(B) *Satya or the vow of faithfulness*—Truthfulness is not speaking what is only true, but speaking what is true as well as good and pleasant Truthfulness should be used in thought, speech and action Even one should not favour any false argument

(C) *Asteya or the vow of non-stealing*—Generally, this vow consists in not taking what is not given But abatement of theft receiving stolen property, violating state rules, use of false weights and measures and adulteration etc all should be ommitted.

(D) *Brhmacharya or the vow of self control*—This vow is generally interpreted as

the self is not easy task. One should develop some moral qualities A right beliver or samyaka dristi must possess the following four essential virtues :—

(a) *Prasama* or calmness

(b) *Samvega* or detaehment.

(c) *Anukampa* or kindness.

(d) *Astikya* or realisation.

One should do practice seriously these virtues in his life. Due to a long practice of these virtues, one can realise the true nature of the self. Only a faith in the existence of self or in the principles of Jainism is not enough. But *samyaka darsana* has its spiritual and........Practical values, these are necessary conditions for one, who wants to know true nature of the self. Calmness, detachment, kindness and self-realisation make the self more pure and perfect. One should practice these virtues in the every field of life.

(2) *Samyaka Jnana*—Right knowledge, does not here mean a knowledge epistemologically right. But right knowledge is that which leads to spiritual insight. Right knowledge should help in the realisation of truth. In other words, the knowledge which helps to know the true nature of the self. Such knowledge teaches us what are theessential qualities of the self, how one can get them, what are the causes of bondage, (BANDH), how can one remove ignorance and how one can get perfection. One can acquire right knowledge either from scriptures or from great saints.

(3) *Samyaka Charitra*—As mentioned before, the mental and bodily discipline are necessary for the perfection of the self. The passions can be removed by the practice of moral laws. In other words, moral end helps for the developing spiritual life. Therefore the jains have introduced a way of life, based on some moral laws and this is called *Samyaka Charitra* or right conduct. I will try to explain the important rules of right conduct, these are : the five vows, the three fold path of self discipline and the practice of six kinds of carefulness. The five vows are the vow of *ahimsa* or non violence, the vow of *satya* or truthfulness, the vow of *asteya* or non-stealing, the vow of *Brahmachrya* or self control and the vow of aparigraha or non possession. The three fold path of self discipline are the *manogupti*, *vacanagupti* and *kayagupti* (the discipline of mind, speech and body). And the six kinds or carefulness *(samiti)* are :

(a) *irya samiti* (Carefulness in walking)

(b) bhasa samit (Carefulness in speech).

(c) *esana samiti* (Carefulness in eating),

(d) *dana samiti* (Carefulness in lifting),

(e) *niksepa samiti* (Carefulness in laying down),

(f) *utsarga samiti* (Carefulness in deposing waste) products.

One could do his every day work as carefully as possible to him, that his activities would not be harmful to others, even to a small ant or worm. The practice of *samiti* or the carefulness in his all activities would make his kind and would be helpful to deserve the

that of celibacy. But a householder has advised to consider all women except one's wife as mother, sister or daughter.

(E) *Aparigraha or the vow of non-possession*—A house holder should try to limit his activities for possessions Because parigraha is the cause of all attachments and it is also an obstacle to self realisation

Again, the Jainas have divided the five vows in two grades, the small vows (Anuvrata) and the great vows *(mahavrata)* The small vows are for the householders, these are the partial vows. These are not very strict, because a householder has some responsibilities towards his family. society and country And the great vows are for the monks who have not any attachment towards either the family or society or country Therefore, the vows for the monks are more strict than the householders ; as for example, a householder can comit *virodhihimsa* in self defence but a monk cannot commit any kind of violence. He must over power all difficulties due to his high moral and spiritual power

The difference between the *anuvrata* and *mahavrata* lies in quantity not in quality. The fundamental spirit behind the vows is the same We can say that the vows of the householder is the first step towards self discipline, while the *mahavratas* are the final stage of discipline All vows should be observed in thought, speech and action. Otherwise they would not fulfil the aim to reach high moral and spiritual end.

We have gone through a short description of the *triratna* or the threefold path of the Jainas. Right faith, right knowledge and right conduct cannot exist exclusively to each other. *Right conduct with right faith and right knowledge only can lead to perfection of the self. Bodily and mental discipline is useless if one follows it blindly Therefore the Jainas assert samyaka darsana and samyakajnana as the necessary conditions for the success of samyaka caritra In other* words, samyaka darsana and samyaka jmana are the states *of belief and feeling and have their spiritual significance while, samyaka charitra is a ground for moral end All the three have their equal value and the three are the supplementary to each other*

বীর স্তুতি

গণেশ লালওয়ানী

পর্ব্বতে যেমন সুমেরু শ্রেষ্ঠ
বৃক্ষে শাল্মলি বৃক্ষ,
বনে মন্দন বন
জ্ঞানে ও চরিত্রে
তেমনি ভগবান মহাবীব শ্রেষ্ঠ।

ধবনিতে যেমন মেঘমন্ত্র শ্রেষ্ঠ,
নক্ষত্র শশাঙ্ক,
সৌবভে চন্দন বাস,
মুনিদেব মধ্যে
তেমনি ভগবান মহাবীব শ্রেষ্ঠ।

সমুদ্রে যেমন স্বীযম্ভু বমণ শ্রেষ্ঠ,
নাগে ধবনেন্দ্র,
বসে ইক্ষুবস,
তপস্বীদেব মধ্যে
তেমনি ভগবান মহাবীব শ্রেষ্ঠ।

হস্তীতে যেমন ঐবাবত শ্রেষ্ঠ
বনচবে সিংহ, জলে গঙ্গোদক,
পক্ষীতে বেনুদেব গরুড,
নির্বানবাদীদেব মধ্যে
তেমনি ভগবান মহাবীব শ্রেষ্ঠ।

যোদ্ধায যেমন বিশ্বসেন শ্রেষ্ঠ,
ফুলে অববিন্দ,
ক্ষত্রিয়ে দানতবাক্য,
ঋবিদেব মধ্যে
তেমনি ভগবান মহাবীব শ্রেষ্ঠ

দেবতাব যেমন বৈমানিক শ্রেষ্ঠ,
সভায সুধর্ম সভা,
ধর্মে মোক্ষ ধর্ম,
জ্ঞানীদেব মধ্যে
তেমনি ভগবান মহাবীব শ্রেষ্ঠ।

দানে যেমন অভযদান শ্রেষ্ঠ,
সত্যে অনবদ্য বাক্য,
তপস্যায ব্রহ্মচর্য্য,
তেমনি লোকত্তম
ভগবান মহাবীব শ্রেষ্ঠ।

অনুপম ছিল তাঁব ধর্ম।
অনুপম ছিল তাঁব ধ্যান,
সেই ধ্যান
শংখেব চাইতে ও শুক্ল,
চাঁদের চন্দ্রিকাব চাইতে ও ধবল।

তিনি উত্তম ধ্যানে
ক্ষয কবে ছিলেন কর্ণ বজ,
লাভ কবে ছিলেন পরমা সিদ্ধি,'
যার আদি আছে
কিন্তু অন্ত নেই।

ভগবান মহাবীর ও অনেকান্তবাদ

গণেশ লালওয়ানী

ভগবান মহাবীর তখন সাধনায় সিদ্ধিলাভ করে নানাস্থানে ঘুবে বেডাচ্ছেন। এমনি একবার ঘুবতে ঘুরতে তিনি এসে উপস্থিত হলেন বৎস দেশেব রাজধানী কৌশাম্বীতে। তিনি কারুব ঘরে অবস্থান করতেন না। সাধাবণতঃ নগরেব বাইবে বা চৈত্যে অবস্থান কবতেন। এখানে এসেও তাই চন্দ্রাবতবণ চৈত্যে অবস্থান কবলেন।

এই সময বৎস দেশের সিংহাসনে ছিলেন রাজা উদযন। উদযনেব কথা সকলেই জানেন। এব সম্বন্ধেই কালিদাস তাঁর মেঘদূতে বলেছেন—উদযন-কথা-কোবিদ্ গ্রামবৃদ্ধাম্? উদযন ও 'বাসবদত্তাব গল্প নাটকে আখ্যাযিকায নানাস্থানে ছডিযে রযেছে।

এই উদযনের মা ছিলেন মৃগাবতী। মৃগাবতী ছিলেন বৈশালী গণতন্ত্রের নাযক শ্রীমান্ মহাবাজ চেটকের মেযে। সাংসারিক সম্পর্কে ভগবান মহাবীব-এর মামাতো বোন। তিনি যখন সংবাদ পেলেন যে মহাবীর কৌশাম্বীতে এসেছেন তখন তিনি উদয়নকে সঙ্গে নিযে চন্দ্রাবরণ চৈত্যে তাঁর সঙ্গে দেখা কবতে গেলেন। সঙ্গে আরো এলেন উদযনেব পিসী রাজা শতানীকেব মেযে জযন্তী।

মহাবীর ধর্মোপদেশ দিলেন। তাবপব প্রশ্নোত্তর। জযন্তী শ্রমণোপাসিকা ছিলেন। শ্রমণ ধর্মে তাঁর গভীর অনুরাগ ছিল প্রশ্নোত্তরেব সময তিনি তাই ভগবান মহাবীবকে অনেক প্রশ্ন কবলেন। সে সমস্ত প্রশ্নের একটি: ভগবান্, ঘুমিযে থাকা ভালো না জেগে থাকা?

মহাবীব বললেন, কারু ঘুমিযে থাকা ভালো, কারু জেগে থাকা।

জযন্তী বললেন, ভগবান, সে কি রকম?

মহাবীর বললেন, যে অধার্মিক, যে অধর্মের অনুষ্ঠান কবে, অধর্ম যার প্রিয, তার ঘুমিযে থাকাই ভালো, তাহলে সে অনেক লোকেব অনিষ্ট কবা হতে বিবত থাকবে এবং এই বিবত থাকাব জন্য তার পাপ সঞ্চযও কম হবে। কিন্তু যে ধার্মিক, ধর্মানুরাগী, ধর্মই যাব প্রিয তাব জেগে থাকাই ভালো। সে যদি জেগে থাকে তবে সে অনেক লোককে ধর্মে প্রবর্তিত করবে এবং নিজেরও কল্যাণ সাধন কববে। জযন্তী, তাই কাকব ঘুমিযে থাকা ভালো, কারুব জেগে থাকা।

জয়ন্তী আবার প্রশ্ন করলেন, ভগবান্, দুর্বলতা ভালো না সবলতা?

মহাবীর বললেন, কারুর দুর্বলতা ভালো কারুব সবলতা।

ভগবান্ সে কি রকম?

জযন্তী, যে অধার্মিক, যে অধর্ম দ্বাবা জীবিকা অর্জন করে, তাব দুর্বলতাই ভালো। সে যদি দুর্বল হয তবে অনেকের দুঃখেব কারণ হয না। কিন্তু যে ধার্মিক তার সবল হওয়াই ভালো। সে অনেক সৎকাজের অনুষ্ঠান করতে পাবে।

জযন্তী আবার প্রশ্ন করলেন, ভগবান, উদ্যমী হওয়া ভালো না অলস?

মহাবীব বললেন, কাকব উদ্যমী হওযা ভালো, কারুব অলস।

জযন্তী বললেন, সে কি বকম?

মহাবীব বললেন, যে অধার্মিক, যে অধর্মেব আচবণ করে বেডায তার অলস হওযাই ভালো। তাতে সে অনেকের সামান্যই ক্ষতি করতে পারবে। কিন্তু যে ধার্মিক, ধর্মানুষ্ঠান করে, তার উদ্যমী হওযাই ভালো, কারণ তাতে সে অনেকের মঙ্গল সাধন কবতে পাববে।

এ সমস্ত প্রশ্নোত্তর সামান্যই মনে হতে পারে, কিন্তু এদের পেছনে যে দৃষ্টিভঙ্গী রযেছে তা সামান্য নয। সে দৃষ্টিভঙ্গী আপেক্ষিক বা অনেকান্তবাদেব। আপেক্ষিকবাদ বা **Relativity** আজ আমাদের কাছে নূতন নয কিন্তু আজ হতে ২৫০০ রছব আগে এই দৃষ্টিভঙ্গী নিশ্চযই নূতন ছিল। ভারতীয মনীষার ক্ষেত্রেও নূতন কারণ আপেক্ষিক দৃষ্টিভঙ্গী একমাত্র জৈন দর্শন ছাডা আর কোথাও দেখা যায না। এজন্য জৈন দর্শনকে অনেক সময় অনেকান্ত দর্শন বলে অভিহিত করা হয। আর এই যুগান্তকারী অনেকান্ত দর্শনের প্রবর্ত্তক ছিলেন ভগবান মহাবীব।

সংক্ষেপে আপেক্ষিকবাদের তাৎপর্য্য হল বিভিন্ন প্রকার দৃষ্টিকোণ হতে বিচার বা দেখা। পদার্থ মাত্র যখন অনন্তধর্ম তখন একান্ত্য ব্য নিশ্চযাত্মকরূপে কোন বস্তুর ধর্ম নিরুপণ করবার চেষ্টা কখনো সত্য হতে পারে না। তাকে নানা ধর্ম দিযে বিচাব কবে দেখতে হয। লোকটি পিতা বলে তার সম্পূর্ণ পরিচয দেওযা হয না। পুত্রেব অপেক্ষায় সে যেমন পিতা, পিতাব অপেক্ষায সে তেমনি পুত্রও। তাই লোকটিকে যথার্থভাবে জানতে গেলে তার সমস্ত ধর্মকে গ্রহণ করতে হয়।

আমাদের উপরোক্ত উদাহরণেব ঘুমিযে থাকা ভালো না জেগে থাকা, সবল হওযা ভালো না দুর্বল, উদ্যগী হওযা ভালো না অলস—অন্য কেউ হলে নিশ্চযই বলত, জডত্ব ভালো নয়, দুর্বলতা পাপ, উদ্যমী হওযাই পুরুষার্থ। কিন্তু মহাবীর তা বলেননি। বলেননি তাব কারণ তাঁর অনেকান্ত দৃষ্টি। জডত্ব যেমন দোষ, ক্ষেত্রও সময বিশেষে তা আবারগুণও। যে দুরাচার, যে সমাজ বিরোধী, সে যদি ঘুমিয়ে থাকে তাতে যেমন সামুহিক মঙ্গল, তেমনি তাতে তার ব্যক্তিগত কল্যাণও। কুম্ভকর্ণ বছরের পব বছর না ঘুমিয়ে যদি জেগে থাকতো, তবে সংসারের কি হত ভাবতেও ভয করে! রাবণ যদি উদ্যমী না হতেন তবে সীতা হরণ কবতেন না, লঙ্কারও বিনাশ হত না।

দুষ্ট লোকের কোনো যুগেই অভাব নেই। সেদিনও ছিলনা, আজো নেই। তাদের দিকে চেযে ভগবান মহাবীরের সেই কথাই মনে পড়ে—এরা যদি ঘুমিযে থাকত বা বলহীন হত বা উদ্যমহীন তাহলে সমাজের যেমন তাতে কল্যাণ ছিল, তেমনি তাদের নিজেদের ব্যক্তিগত ভাবেও কল্যাণ ছিল।

भगवान महावीर जयन्ती समारोह समिति

के

भूतपूर्व अध्यक्ष एवं संयोजक

	अध्यक्ष	संयोजक	सयुक्त संयोजक
सन् १९६५	श्री मोहनलाल लल्लूचन्द शाह	श्री कमलसिंह दुधोड़िया	श्री पन्नालाल नाहटा श्री सम्पतकुमार
सन् १९६६	श्री विजय सिंह नाहर	श्री पन्नालाल नाहटा	श्री सम्पतकुमार गधैया
सन् १९६७	श्री दीपचन्द काकरिया	श्री पन्नालाल नाहटा	श्री सोहनलाल पारसान
सन् १९६८	श्री विजय सिंह नाहर	श्री पन्नालाल नाहटा	श्री सोहनलाल पारसान श्री पूनमचन्द गीया
सन् १९६९	श्री हनुमानमल बेंगानी	श्री पूनमचन्द गीया	श्री अनिल कोठारी श्री हिम्मत सिंह जैन
सन् १९७०	श्री जुगमन्दिर दास जैन	श्री तिलोक चन्द डागा	
सन् १९७१	श्री शीतलप्रसाद जैन	श्री तिलोकचन्द डागा	श्री रिखवदास भंसाली श्री नन्दकिशोर जैन
सन् १९७२	श्री शीतलप्रसाद जैन	श्री कमलकुमार जैन	श्री प्रफुल्ल आर० कोठारी श्री धन्नालाल काला

भगवान महावीर जयन्ती समारोह समिति

संचालक—श्री जैन सभा, ७ शम्भूमल्लिक लेन, कलकत्ता-७

वी० सं० २४९९ की कार्यकारिणी समिति के सदस्य

सभापति

श्री हनुमानमल बैंगानी

उपसभापति

श्री गम्भीरचन्द बोथरा

श्री रिखबचन्द पहाड़िया

श्री केशवलाल जे० खण्डेरिया

श्री विहारीलाल जैन

प्रो० कल्याणमल लोढा

संयोजक

कमल कुमार जैन

संयुक्त संयोजक

श्री अनिलकुमार कोठारी

श्री नन्दकिशोर जैन (सम्पर्क विभाग)

श्री पूनमचन्द घीया

श्री प्रफुल्ल आर० कोठारी

श्री विजयकुमार छाजेड (स्मारिका विभाग)

कोषाध्यक्ष

श्री रिखबदास भंसाली

सदस्य

श्री विजय सिंह नाहर

श्री रामकृष्ण सरावगी

श्री परीचन्द बोथरा

श्री मिश्रीलाल जैन

श्री रामचन्द्र सिंघी

श्री नथमल सेठी

श्री जुगमन्दिरदास जैन

श्री दीपचन्द कांकरिया

श्री मदनलाल पाण्डया

श्री गोविन्दलाल सरावगी

श्री कुमारचन्द्र सिंह दुधोड़िया

श्री मोहन भाई झवेरी

श्री हरकचन्द कांकरिया

श्री भंवरमल सिंघी

श्री नवरतनमल सुराना

श्री छगन भाई चूड़ावाला

श्री सीताराम पाटनी

श्री खेमचन्द सेठिया

श्री सूरजमल बच्छावत

श्री दीपचन्द नाहटा

श्री लाभचन्द राय सुराना
श्री छोटालाल हरीदास गाधी
श्री जयचन्दलाल वगडा
श्री हरीसिंह श्रीमाल
श्री प्रेमचन्द मोघा
श्री रामस्वरूप जैन
श्री कन्हैयालाल घोडावत
श्री हिम्मत सिंह जैन
श्री छतरसिंह वैद
श्री नागरमल जैन
श्री जयकुमार काला
श्री कातिलाल श्रीमाल
श्री तिलकचन्द जैन
श्री नन्दलाल जैन
श्री केवलचन्द नाहटा
श्री कल्याणचन्द जैन
श्री केशव भाई शाह
श्री मन्नालाल वरडिया
श्री मोहनलाल वैद
श्री धन्नालाल काला
श्री वावूलाल लक्ष्मीचन्द शाह
श्री गणेश ललवानी
श्री रसिकलाल सेठ
श्री नरेन्द्र देशाई
श्री पूरणचन्द जैन
श्री मोहनलाल पारसान
श्री प्रभूदयाल डावडीवाला
श्री सन्तोषचन्द वरडिया
श्री ताजमल वोथरा

श्री दिलीप सिंह नाहटा
श्री किशनलाल काला
श्री रमणिकलाल मेघानी
श्री सिद्धराज भण्डारी
श्री महेशचन्द जैन
श्री माणिकचन्द नाहटा
श्री धिरेन्द्र कुमार जैन
श्री राजेन्द्र सिंह लोढा
श्री कैलाशचन्द जैन
श्री प्रद्योत कुमार नाहटा
श्री इन्द्र प्रकाश मेहता
श्री तिलोकचन्द डागा
श्री भंवरलाल सिंघी
श्री श्रेणिक कुमार सिंघी
श्री राजेन्द्र कुमार जैन
श्री झवरलाल वैद
श्री श्रवणकुमार जैन
श्री भरत भाकडा
श्री शातिलाल वाकलीवाल
श्रीमती सूरज देवी वैंगानी
श्रीमती उदयकुमारी दुधोडिया
श्रीमती शकुन्तला चिंतामणी
श्रीमती सुलेखा जैन
श्री भंवरलाल करनावट
श्री भवरलाल नाहटा
श्री ओंकारलाल वोहरा
श्री सुगनचन्द पाण्डया
श्री वछराज सेठिया

भगवान महावीर जयन्ती समारोह समिति

वि० सं० २४६६ के सदस्य

श्री हनुमानमल बेगानी
श्री विजयसिंह नाहर
श्री शीतल प्रसाद जैन
श्री परीचन्द बोथरा
श्री केशवलाल जे० खण्डेरिया
श्री मिश्रीलाल जैन
श्री रामचन्द्र सिंघी
श्री जुगमंदिर दास जैन
श्री गोविन्दलाल सरावगी
श्री मदनलाल पाण्डया
श्री हरकचन्द कांकरिया
श्री नथमल सेठी
प्रो० कल्याणमल लोढ़ा
श्री रिखबचन्द पहाडिया
श्री मोहनलाल बैद
श्री गम्भीरचन्द बोथरा
श्री मदनलाल काला
श्री कुमारचन्द्र दुधोडिया
श्री नन्दलाल सरावगी
श्री पारसमल कांकरिया
श्री मोहनलाल पारसान
श्री नवरतनलाल सुराना
श्री हिम्मत सिंह जैन
श्री मोहनलाल बांठिया
श्री कमल कुमार जैन
श्री लाभचन्द राय सुराना
श्री हरकचन्द पाण्डया
श्री सूरजमल बच्छावत
श्री भंवरलाल नाहटा
श्री अनिलकुमार कोठारी
श्री छोटालाल हरीदास गांधी
श्री विजयकुमार छाजेड
श्री दीपचन्द नाहटा (सरदार शहर)
श्री रिखबदास भंसाली
श्री पूममचन्द गीया
श्री नन्दकिशोर जैन
श्री विहारीलाल जैन
श्री रसिकलाल सेठ
श्री प्रफुल्ल आर० कोठारी
श्री भंवरलाल बैद
श्री किशनलाल काला
श्री भरत भाकडा
श्री समुद्रगुप्त जैन
श्री कांतिलाल श्रीमाल
श्री रामस्वरूप जैन
श्री इन्द्रप्रकाश मेहता
श्री नन्दलाल जैन
श्री प्रद्योतकुमार नाहटा
श्री जयकुमार काला
श्री विरेन्द्रकुमार जैन
श्री बाबूभाई लक्ष्मीचन्द दोसी
श्री ताजमल बोथरा
श्री राजवैद्य जसवंतराय जैन
श्री जगतसिंह चोपडा
श्री शांतिलाल वाकलीवाल
श्री जयचन्द लाल वगडा
श्री मानकचन्द नाहटा
श्री श्रवणकुमार जैन

श्री नागरमल जैन
श्री श्रीचन्द रामपुरिया
श्री धर्मचन्द जैन
श्री सुगनचन्द पाण्डया
श्री विजयचन्द मोघा
श्री गणेश ललवानी
श्री अवधनारायण जैन
श्री झवरलाल वोथरा
श्री सीताराम पाटनी
श्री भंवरलाल करनावट
श्री तिलकचन्द जैन
श्री राजेन्द्र सकलेचा
श्री चुन्नीलाल भायचन्द् शाह
श्री वलदेवराज जैन
श्री भंवरलाल सिंघी
श्री केवलचन्द नाहटा
श्री चन्दनमल भूतोडिया
श्री मोतीलाल माल्
श्री मानकचन्द जैन
श्री धर्मचन्द राखेचा
श्री वछराज सेठिया

श्री अशोककुमार जैन
श्री कन्हैयालाल माल्
श्री शोभाचन्द सुराना
डा० भूपेन्द्रकुमार कोचर
श्री महेशचन्द जैन
श्री छतरसिंह वैद
श्री अमरचन्द जैन
श्री रमणिकलाल मेघानी
श्री पूरणचन्द जैन
श्री राजेन्द्रकुमार जैन
श्री कन्हैयालाल घोडावत
श्री धन्नालाल काला
श्री प्रेमचन्द चोपडा
श्री दिलीपसिंह नाहटा
श्रीमती सूरजदेवी वेंगानी
श्रीमती कुसुम कुमारी जैन
श्रीमती सुलेखा जैन
श्रीमती इन्दिरा देवी जैन
श्रीमती मधु मंसाली
श्रीमती उत्तमदेवी मेहता
श्रीमती गणपति छाजेड

नोट—उपरोक्त प्रत्येक सदस्य से ११ रु० की सहायता मिली है।
श्री परीचन्द वोथरा से २५१) की विशेष सहायता प्राप्त हुई है।

દિવ્ય દીપ મહાવીર

પુષ્પા શાહ

વસંતના વધામણા લઇને અલ્હાદ્દક વાયુ વસંતની પહેલા જ આવે છે તેમજ મંગળ તત્વની આગાહી વાતાવરણમા પહેલેથી જ વર્તાવા માડે છે.

ચૈત્ર સુદી તેરસનુ મંગલ પ્રભાત એક અદ્વિતિય મંગલનો સંદેશો લઇ, જનતાને ધીમે ધીમે ઢંઢોળી ચેતનવંતી બનાવી રહ્યુ છે ધીમેથી સમીર સૌના કાનમા કહી રહ્યો છે જે દુનિયાની ચીરકાળની નિદ્રાને પોતાના પ્રબળ પુરૂષાર્થ દ્વારા ક્ષણમાત્રમા વિખેરી નાખવાના છે, તેવી મહાન વિભૂતીના પૃથ્વીપરના આગમનને વધાવવા સજ્જ બનો

અને રાજમહેલમા નોબતો ગગડી ઉઠી રાજકુમારના જન્મના વધામણાની પ્રજાના આનંદનો પાર નથી ઉત્સાહથી પ્રજા રાજમહેલ તરફ ઉમટી રહી છે વીર વર્ધમાનના જન્મોત્સવમા પોતાની આનંદ ઊર્મિઓ વહાવવા, વર્ધમાનનો જન્મ એકલા મનુષ્યને જ નહિ, પરંતુ દેવોને પણ આકર્ષી રહ્યો છે

વર્ધમાન શિશુમાંથી ધીમે ધીમે બાળવયના પ્રાંગણમા પગલા પાડી રહ્યા. બાળવયની તેઓની નીડરતા, અદ્ભુત સાહસિકતાથી તેના સાથીઓ આશ્ચર્યચકિત બની રહેતા.

જીવનના શૈશવને વટાવી યુવાવસ્થામા આતરિક શત્રુઓને જીતવા માયાના ગાઢ સાંસારિક બંધનોને તોડી વર્ધમાન સાધના માટે નીકળી પડ્યા. કર્મશત્રુઓને પરાજીત કરવા માટે તેઓએ જે પ્રબળ પુરૂષાર્થ કર્યો, નિરંતર સાડાબાર વર્ષો સુધી માનવ તથા દેવ સર્જીત અસહ્ય કષ્ટોને લગીરે ખેદની લાગણી વગર સમભાવથી સહન કર્યાં, તેનાથી આશ્ચર્ય ચકિત દેવોએ તથા જનતા જનાર્દને ફક્ત વીરજ નહિ, પરંતુ મહાવીરનુ બિરૂદ આપ્યુ. યુગ યુગાતર સુધી એજ નામ અમર રહ્યુ અને રહેશે.

“સંભાવામિ યુગે યુગે’ ઘણા લોકો માને છે, કે પૃથ્વી ઉપર પાપ જ્યારે ખૂબજ વધી જાય છે, ત્યારે ભગવાન તેના નિવારણ માટે અવતાર લેય છે. આ વાતનુ કેટલે અંશે સમર્થન થઈ શકે, તે કહી શકાય નહિ. પરતુ એટલું તો જરૂર છે, કે પૃથ્વી કયારેય સંપૂર્ણ પુણ્યવતી બની નથી. જો તેવું થઈ શકયુ હોત, તો સ્વર્ગ પૃથ્વી ઉપર જ ઊતરી આવ્યું હોત!

હા! પણ મહાપુરૂષોના પ્રબળ પુરૂષાર્થથી અધર્મ અને તેને અંગે વર્ચસ્વ જમાવી બેઠેલા અંધશ્રદ્ધા અને વહેમોનો જરૂર નાશ થાય છે.

ભગવાન મહાવીર તે યુગના પ્રખર ક્રાંતિકારી પુરૂષ હતા, જે યુગ વૈદિકધર્મની વ્યાપકતાનો અને બ્રાહ્મણોના વર્ચસ્વનો યુગ હતો ધર્મના નામે હોમ, હવનમા પશુઓનો અને કેટલીકવાર માનવીઓનો પણ બલિ ચઢાવાતો રાજાઓ ઉપર પણ બ્રાહ્મણોનુ રાજગુરૂ તરીકે સપૂર્ણ વર્ચસ્વ હતું તેથી પ્રજા તે અધશ્રદ્ધામાથી નીકળી યોગ્યા યોગ્યતાના વિચારની કલ્પના પણ કરી શકતી નહિ એવો હતો એ વૈદિક ધર્મના વ્યાપકપણાનો કાળ

આવા કાળના સ્ચૈતાને કોણ લલકારી શકે ? જે સપૂર્ણપણે નિસ્વાર્થ છે જેને બાહ્ય, અભ્યતર કોઈ શત્રુઓ રહ્યા નથી જે પોતાના સપૂર્ણ જ્ઞાનમા યથાતથ્ય જોઇ રહ્યા છે. તેજ તેવા યુગમા "જીવો અને જીવવાદો" જેવા મહાન સદેશને લોકો સમક્ષ મૂકવાની હિંમત કરી શકે પ્રભુએ કહ્યુ કે "સવ્વ ભૂયપ્પ ભૂયેસુ સમ્મ ભૂયાઇ પાસઓ" દરેક જીવોને તારા જીવ જેવાજ સમજ અને જાણ તને તારો જીવ પ્યારો છે, તેવી જ રીતે દરેક જીવોને પોતાનો જીવ પ્યારો છે તેને અગ્નિમા હોમી દેવાનો તને શુ અધિકાર છે ? હોમ કરવો જ હોય તો તમારા વિકારોનો વાસનાઓનો કરો અને જનતા આ નવો સદેશ સાભળી ચોકી ઉઠી જોવા ઉમટી પડી કે આવો નિર્ભય, કર્ણપ્રિય અને હૃદયગમ સદેશ આપનાર કોણ મહાન તેજસ્વી, પ્રભાવશાળી, નિર્મોહી પ્રભુના વ્યકિતત્વને જોઇને જ ચરણોમા સમર્પિત થઈ ગઇ

એવી મહાન વિભુતીના દર્શનની એ કાળે સ્ત્રીઓને સુવિદ્યા ન હતી સ્ત્રી એટલે એક દાસી, પુરૂષનુ રમકડુ, અને ગૃહસચાલન માટે વગર પગારનુ નૈતરૂ કરનાર તેનાથી કોઇ અધિક લાગણી સ્ત્રીઓ માટે હતી નહિ

પ્રગતિશીલ ગણાતા આ યુગમા સમાન હક્ક માટે ઘણી જ ચળવળ કરવી પડી છે અને પડે છે જે ધર્મના સિધ્ધાત ઘણાજ ઉચ્ચ છે સર્વ જીવોને સમાન ગણનારા છે. તેમા અત્યારે પણ સ્ત્રીઓ માટે ઘણી ઘણી મર્યાદાઓની પાળ બાધેલી છે ધર્મના ઘણા ઉચ્ચ આદર્શોથી સ્ત્રીઓને વગિત રાખવામાં આવી છે.

પ્રભુ મહાવીરનો મહત્વપુર્ણ સદેશ હતો, સ્ત્રીઓને આ અવદશામાથી ઉગારવાનો જે ધર્મ સમભાવનુ સ્તોત્ર વહાવી રહ્યો છે, તેમા ઉચ્ચ શુ ? અને નીચ શુ ? સ્ત્રી શુ ? અને પુરૂષ શુ ? દરેકને પોતાના આત્મ કલ્યાણ માટે સપુર્ણ સ્વતત્રતા છે દરેક જીવ પોતાના પુરૂષાર્થ વડે મુક્ત અને સિદ્ધ બની શકે છે પ્રભુએ પોતાના સઘમા સર્વપ્રથમ સ્થાન આપ્યુ રાજકુમારી ચદનબાળાને, સાધ્વી ચદનબાળા તરીકે. જે સ્થાન સઘમા ગૌતમ સ્વામીનુ તથા દરેક સાધુઓનુ હતુ, તેજ સ્થાન ચદનબાળા તથા દરેક સાધ્વીઓનુ હતુ આવી રીતે આજથી લગભગ અઢી હજાર વર્ષ પહેલા ભગવાન મહાવીરે સ્ત્રીઓના ઉત્કર્ષ માટેનુ "બી" વાવ્યુ અને તે ફાલી ફૂલીને વૃક્ષ થયુ સાધ્વીઓની પરપરા અત્યારે પણ જૈનધર્મમા ઘણી જ છે બલ્કે સાધુઓની સખ્યા કરતા સાધ્વીઓની સખ્યાતો વિશેષ છે જ પરતુ પ્રખર વિદ્વતામા પણ ઘણા સાધ્વીજીઓ આગળ છે.

વચ્ચેના સૈકાઓમાં રાજકીય અસ્થિરતાને અંગે સામાજીક વ્યવસ્થા પણ ઘણી ડામાડોળ થઇ ગઇ. જ્યાં પુરૂષોને જ પુર્ણ સ્વતંત્રતા ન હતી, ત્યા સ્ત્રી સ્વાતંત્રયની તો વાત જ ક્યા? પરંતુ પૃથ્વી સદાયે "બહુ રત્ના વસુંધરા" રહી છે અને તેમાયે ભારતવર્ષની ભુમિએ જેટલા સંતોની શૂરવીરોની ભેટ આપી છે તેટલી બીજા કોઇ દેશોને ભાગ્યે જ મળી હશે.

કોઇપણ રીત, રિવાજ પ્રથા સારી યા ખરાબ તેને ઉખેડીને નવા વિચાર યા આચારને સ્થાપિત કરવા હોય, ત્યારે ઘણા માનસિક બળની અને નૈતિક હિમતની જરૂર હોય છે નૈતિક હિંમતના અભાવે દુનિયા હંમેશા નવી વસ્તુને એકવાર તો ઘેલછા સમજીને ઉપહાસ કરી ઉડાવી દેવા પ્રયત્ન કરે છે પરંતુ દ્રઢતાના સિંચને સિચાયેલ વ્યક્તિ જ અડોલ અને અકંપ રહે છે.

ઝાસીની રાણીએ દેખાડી આપ્યુ કે સ્ત્રીઓ કયાયે શારિરીક અથવા બુધ્ધિબળમા પુરૂષોથી ઉતરતી નથી કુદરતે તે બાબતમા પક્ષપાત કર્યો નથી માનવ સમાજની વ્યવસ્થાએ અમૂક ક્ષેત્રથી સ્ત્રીઓને વંચિત રાખી બુધ્ધિહીન દેખાડવાનો પ્રયાસ કર્યો હતો

અત્યારે સ્ત્રીઓ ઘણાં ક્ષેત્રે સમાનતા ભોગવી રહી છે સ્ત્રીઓનુ સ્થાન ઘણું ઊંચુ આવ્યુ છે. દરેક સ્ત્રીએ સ્વમાનતાપૂર્વક જ જીવવું જોઇએ પરંતુ કયારેક લાગે છે કે વિચારોરૂપી વલોણામાથી નીતરેલુ આ નવનીત નથી ઉપરના ફીણા પરપોટા જેવું છે.

દરેક ક્ષેત્રની, વાતાવરણની, વ્યક્તિની મર્યાદા હોય છે વિચારપુર્વક તેને સમજીને, અનુકૂળ બનીને જે આગળ વધે છે, તેજ ધ્યેયને પામી શકે છે આંધળી દોટમા કયારેક ગબડી પડવાનો ભય છે અનેક બલિદાનોના પવિત્ર પાયા ઉપર ચણાયેલી આ ઇમારતમાથી આપણે મહેલ બનાવવો જ છે વા, વંટોળ સામે યુગ, યુગાન્તર સુધી અણનમ રહે તેવો અને તે માટે દોટ નહિ પણ સ્થિર પગલાની અતિ આવશ્યકતા છે

આ સ્થિર પગલા અહિંસા અનેકાન્તવાદ અને અપરિગ્રહના સિદ્ધાતો દ્વારા જ માંડી શકાશે સમાજવાદ, સામ્યવાદ કોઇ પણ વાદ દ્વારા વ્યક્તિની શક્તિઓને રૂંધીને સમાનતા લાવી શકાય નહિ

પ્રભુએ સમાજવાદનુ નીરૂપણ કરી તેનુ હાર્દ ખૂબજ સરસ રીતે સમજાવ્યુ છે. વ્યકિતની શકિતઓને રૂંધીને નહિ, પણ તેને ખીલવીને તેના વડે ભાવનાઓને ઉદ્દાત બનાવી છે અહિંસા અપરિગ્રહનો અર્થ નિષ્ક્રિયતા નથી. અસત્ આચરણ લાચાર બની જોયા કરો નહિ જ્યારે જરૂર હોય, ત્યારે ખમીરવંતા બની ખડા થઈ જાવ ગાંધીજી આ અહિંસાના સિદ્ધાતને બરાબર સમજ્યા હતા અને તેથી જ અહિંસા દ્વારા આટલી મોટી સિદ્ધિ હાસલ થઇ, અપરિગ્રહના નામે નિષ્ક્રિયતાને અપનાવો નહિ ન્યાયના માર્ગે તમારી શકિતઓને ખીલવી તેના દ્વારા મેળવેલું આસકિત ભાવ વગર જરૂરિયાત પુરતુ રાખી, બાકીનુ જેનામા તે શકિત નથી, તેને વ્હેંચી દો તેથી ઉત્પાદન ઘટતું નથી અને આપોઆપ જ દરેકની જરૂરિયાત જળવાઇ જાય છે

આ છે અપરિગ્રહનો વ્યાપક અર્થ. આ છે સાચો સમાજવાદ તેને બરાબર સમજીને અપનાવવાથી જ જીવન જીવવા માટેના અનિવાર્ય સાધનો અન્ન અને વસ્ત્રની આજની કટોકટીનુ નિવારણ થઇ શકશે.

આવતાકાળના એંધાણ પારખી, પ્રત્યક્ષ જોઇને જ, પ્રભુ મહાવીરે કરૂણાભાવથી પ્રેરાઇ જનતાના સુખ અને શાંતિ માટે અહિંસા, સત્ય અને અપરિગ્રહનો મહાન ઉપદેશ આપેલો છે જેના આપણી ઉપર આવા અગણિત ઉપકારો છે, તે પ્રભુ મહાવીરની જન્મ જયતિ આવી રહી છે. અને "પચ્ચીસસોમી નિર્વાણ તિથિ" પણ નજીકના ભવિષ્યમા જ આવી રહી છે ત્યારે એ દેવાધિદેવ, પરમકૃપાળુ પરમાત્મા પ્રત્યે આપણુ શુ કર્ત્તવ્ય છે? તે વિચારવાની અને એક ડગલું આગળ વધી આચરણમા મૂકવાની ક્ષણ આવી પ્હોચી છે

ક્ષણજીવી કાર્યક્રમો તો દર વર્ષે થતા રહે છે અને ભુલાઇ જાય છે "પચ્ચીસસોમી નિર્વાણ તિથિ" ઉપર તો કોઈ સગીન કાર્ય કરવાનુ છે જે યુગ યુગાન્તર સુધી દશે દિશાઓમા પ્રભુના સદેશને ફેલાવતું રહે, પ્રસારિત કરતું રહે.

પ્રભુ મહાવીરના ભકતો! ઉઠો, ઐકયતા સાધો અને સગીનકાર્યની રૂપરેખા "વીરાયતન" આકાર લઇ રહી છે, તેમા કાર્ય રૂપી અજલી અર્પી કૃતાર્થ થાઓ।

